मेरा मतलब यह नहीं है। दो-एक दिन जाने से ऐसी क्या हानि होगी! बात तो यह सोचने की है कि वे लोग हैं बड़े आदमी, और हम ठहरे दुखिया ग़रीब। उनसे अधिक हेल-मेल बढ़ाने का काम ही क्या है?

कुञ्ज ने जवाब दिया—मैं उनके यहाँ अपने मन से तो गया नहीं था कुसुम!

कुसुम ने कहा—सो तो ठीक है, लेकिन बुला ले जाने से भी जाने की क्या ज़रूरत है दादा?

कुञ्ज ने कहा—अच्छा, तू इन ब्राह्मणों की लड़कियों के पास क्यों जाती-आती है—इनसे क्यों बहुत मेल-जोल रखती है? ये भी तो सब बड़े आदमी हैं!

भाई के मन का भाव समझकर कुसुम हँसने लगी। फिर कहा—उनके साथ तो मैं छुटपन से ही खेलती-कूदती रही हूँ। इसके सिवा वे मेरी जाति-बिरादरी भी नहीं हैं, मेरे समाज की भी नहीं हैं। यहाँ हमारे लिए कोई लज्जा की बात नहीं। लेकिन उन लोगों की बात दूसरी है।

कुञ्ज ने दम भर चुप रहकर कहा—वहाँ भी लज्जा की कोई बात नहीं है। लछमी मैया ने उन पर दया की है, उनके पास चार पैसे हैं, यह सच है; लेकिन उनके तनिक भी दिमाग़ या अहङ्कार नहीं है, वे तो गाय जैसे सीधे आदमी हैं। वृन्दावन की मा ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर जिस तरह—

बात पूरी न होने पाई, चिढ़कर और ऊबकर कुसुम बीच ही में कह उठी—फिर वही पुरानी बातें उठने लगीं! मा को उन लोगों ने जो इतना बड़ा कलङ्क लगाया था, उसे शायद तुम भूल गये हो।

कुञ्ज ने इसका प्रतिवाद करके कहा—उन्होंने अपने मुँह से ऐसी कोई बात नहीं कही थी। दुष्ट लोगों ने जलन के मारे बदनाम किया था।

कुसुम ने कहा—और इसी से उन लोगों ने मुझे अपने यहाँ से निकालकर दूसरा व्याह कर लिया था—क्यों?

कुञ्ज ने कुछ लज्जित होकर कहा—हाँ, यह ठीक है; लेकिन इसमें बेचारे वृन्दावन का कुछ भी दोष न था। यह तो उसके बाप का दोष था।

कुसुम ने दम भर चुप रहकर शान्त भाव से कहा—दोष चाहे जिसका रहा हो दादा, जो किसी तरह होने का नहीं, उसी की चर्चा बार-बार सैकड़ों दफ़े छेड़ने की ज़रूरत क्या है? मैं अब बहस नहीं कर सकती।

कुञ्ज पहले तो एकाएक कुछ जवाब न दे सका, उसके बाद कुछ क्रोध के स्वर में बोला—तू तो बहस नहीं कर सकती, लेकिन मुझे तो सभी ओर देखना है—आगा-पीछा सोचना है! आज मैं मर जाऊँ, तो तेरी क्या दशा होगी, यह कभी सोचती है?

कुसुम खीझ उठी, लेकिन मुँह से उसने कुछ नहीं कहा।

कुञ्ज मुख का भाव गम्भीर करके कहने लगा—मैं अपने बड़े-बूढ़ों से पूछ चुका हूँ, तेरी सास भी नलडाँगा (गाँव) के बूढ़े बाबाजी तक से राय ले आई है। सभी ने ख़ुशी के साथ इस काम के लिए अपनी राय दे दी है। इसकी भी तुझे कुछ ख़बर है?

कुसुम के मुख का भाव एकाएक कठिन हो उठा। किन्तु वह संक्षेप में "जानती नहीं हूँ तो क्या!" इतना कहकर चुप हो गई।

उसकी, उसकी मा की, उसकी कण्ठी-बदलौवल की चर्चा उसके समाज में चल रही है, आलोचना हो रही है, गण्य-मान्य पुरुषों की राय ली जा रही है—यह जानकर कुसुम का क्रोध भड़क उठा। किन्तु अपने उस भाव को दबाकर कुसुम एकाएक यह प्रश्न कर उठी—इस वक्त क्या खाओगे दादा?

बहन के मन का भाव कुञ्ज समझ गया। उसने भी मुँह फुला करके कहा—कुछ भी नहीं। मुझे भूख नहीं है।

कुसुम और भी क्रुद्ध हो उठी; लेकिन फिर भी ग़ुस्से को सँभालकर अपनी कोठरी के भीतर चली गई।

कुञ्ज ने एक चिलम तमाखू भरकर वहीं बैठे-बैठे जलाई, फिर दीवार के सहारे हुक़्क़ा रखकर पुकारा—कुसुम!

कुसुम अपनी कोठरी के भीतर बैठी कुछ सिलाई कर रही थी। बोली—क्या है?

कुञ्ज—रसोई कब करेगी? शाम होने को आई है।

कुसुम ने वहीं से जवाब दिया—आज नहीं करूँगी।

कुञ्ज—क्यों न करेगी? वही तो पूछता हूँ।

कुसुम ने चिल्लाकर कहा—सौ दफ़े कौन कहे, कह तो चुकी।

बहन का उत्तर सुनकर धम-धम पैर रखता हुआ कुञ्ज कोठरी में दाख़िल हुआ, और चिल्लाकर बोला—जला न मुझे कुसुम, इस तरह दिक़ करेगी तो जिधर सूझेगा उधर चल दूँगा—यह मैं तुझसे कहे देता हूँ।

कुसुम—जाओ! अभी जाओ! मैं घर में चुहड़े-चमारों की तरह यों चीख़ने-चिल्लाने नहीं दूँगी। जी चाहे तो जाओ, वहाँ रास्ते में खड़े होकर जी भर चिल्लाओ।

कुञ्ज का क्रोध बेहद बढ़ गया। उसने कहा—क्यों री कलमुँही, छोटी बहन होकर बड़े भाई से घर से निकल जाने को कह रही है तू?

कुसुम ने कहा—मैं कहती तो हूँ। बड़े होने से क्या तुम जो चाहोगे, वही करोगे?

बहन के मुँह की ओर ताककर कुञ्ज मन में कुछ डर गया। उसने आवाज़ धीमी और नरम करके कहा—मैंने क्या मनमानी की, ज़रा सुनूँ तो?

कुसुम—तो फिर क्यों मुझ से बिना कहे तुम वहाँ खा-पी आये?

कुञ्ज—क्यों, उसमें दोष क्या हुआ?

कुसुम ने तीव्र स्वर में कहा—दोष क्या हुआ ? बहुत बड़ा दोष हुआ। मैं मना किये देती हूँ, अब कभी तुम वहाँ न खाना-पीना।

कुञ्ज बड़ा भाई ठहरा, कलह के समय दब जाना उसे लज्जा-जनक जान पड़ा। इसी से उसने भी कुछ कड़क कर ही कहा—तू क्या मुझसे बड़ी है, जो मुझ पर हुकुम चलावेगी ? मेरा जब जहाँ जी चाहेगा, वहीं जाऊँगा।

कुसुम ने वैसे ही ज़ोर से कड़ककर कहा—नहीं, न जा सकोगे। मैं सुन पाऊँगी तो, कहे देती हूँ दादा, अच्छा न होगा।

अब की कुञ्ज सचमुच डर गया। तो भी मुँह का साहस बनाये रखकर कहा—अगर जाऊँगा तो तू क्या कर लेगी ?

कुसुम हाथ की सिलाई फेंककर बिजली की तरह उठ खड़ी हुई और चिल्लाकर बोली—मुझे ग़ुस्सा न दिलाओ दादा, कहती हूँ—जाओ मेरे आगे से, हट जाओ, कहना मानो।

अब की कुञ्ज सटपटाकर कोठरी से बाहर निकल आया, और किवाड़े की आड़ से नरम आवाज़ में बोला—तेरे डर से हट जाऊँ ? अगर न जाऊँ तो तू मेरा क्या कर सकती है ?

कुसुम ने कुछ उत्तर न दिया; चिराग़ की बत्ती ज़रा और उभारकर, रोशनी तेज़ करके वह फिर सिलाई करने को बैठ गई। आड़ में खड़े होने से कुञ्ज का साहस बढ़ गया। उसने पहले की अपेक्षा ऊँचे स्वर में कहा—"कहावत है कि जिसका

जो स्वभाव है वह मरने पर ही जाता है। आप तो डाइन की तरह चिल्लायगी, उसमें कुछ दोष नहीं; लेकिन मैं जो ज़रा ज़ोर से बोला कि बस--" कहते-कहते कुञ्ज रुक गया। कोठरी के भीतर से कोई प्रतिवाद न सुन पड़ा। यह देखकर वह मन ही मन बहुत सन्तुष्ट हुआ। जाकर हुक़ा उठा लिया; चिलम जल गई थी, उसमें व्यर्थ ही दो-चार कश खींचे, फिर आवाज़ कुछ और ऊँची करके कहा--"मैं बड़ा हूँ, मैं ही घर का मालिक हूँ, मेरे ही हुकुम से सब काम होंगे।" इसके बाद जली चिलम उलटकर, फिर तमाखू भरते-भरते, अब की काफ़ी ऊँचे स्वर में यों कहना शुरू किया--"मैं किसी की नहीं सुनने का! बार-बार सैकड़ों बार 'नहीं' सुनते-सुनते कलेजा पक गया। अब मैं किसी की नहीं सुनूँगा। मैं जब मालिक हूँ, मेरा घर है, तब मैं जो कहूँगा वही—" सहसा पीछे पैरों की आवाज़ सुनकर गरदन घुमाते ही सन्नाटे में आकर कुञ्ज थम गया। कुसुम चुपचाप आकर खड़ी हुई ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर ताक रही थी कि मुँह की बात मुँह ही में रह गई।

कुसुम ने कहा—बैठे-बैठे लड़ाई-झगड़ा ही करोगे? यहाँ से टलोगे नहीं?

छोटी बहन की उस तीक्ष्ण दृष्टि के सामने बड़े भाई का पुरखा बनने का शौक़ जाता रहा। उसके गले से बात न निकल सकी। कुसुम ने उसी भाव से कहा—जाते हो कि नहीं दादा?

इस समय न वह पहले का कुञ्ज ही था, और न वह आवाज़ ही थी। उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—कहता तो हूँ, तमाखू भर लूँ तो जाऊँ।

कुसुम ने, हाथ बढ़ाकर "लाओ मुझे दो" कहकर, चिलम हाथ में ले ली। वह भीतर चली गई। मिनट भर में आकर हुक्के के ऊपर चिलम रख दी, और पूछा—सुनार की दूकान में जाते हो न ? ❀

कुञ्ज ने गरदन हिलाकर कहा—हाँ।

कुसुम ने बिलकुल सहज भाव से कहा—अच्छा वहाँ हो आओ। मगर अधिक रात न कर देना—रसोई होते देर नहीं लगेगी।

हाथ में हुक्का लेकर कुञ्ज धीरे-धीरे चला गया।

२

उस दिन बहन के आगे वृन्दावन की स्थिति का वर्णन करते समय कुञ्ज ने कुछ भी अत्युक्ति नहीं की थी। वृन्दावन के घर में सचमुच लक्ष्मीजी की बड़ी कृपा थी। दौलत उबली पड़ती थी, किन्तु उसके लिए घमण्ड या दिमाग़ रत्ती भर भी न था।

❀ बङ्गाल में रात को जब सुनार दुकान में काम किया करता है तब उसके मित्र वहाँ आकर गप-शप लड़ाया करते हैं।

उस गाँव में पाठशाला कोई न थी। वृन्दावन ने लड़कपन में अपनी ही चेष्टा से बँगला लिखना-पढ़ना सीखा था; और तभी एक पाठशाला खोलने का सङ्कल्प भी किया था। किन्तु उसका बाप गौरदास पूरा उस्ताद था। एकमात्र सन्तान होने पर भी ऐसे व्यर्थ के काम में वृन्दावन को पिता से उत्साह या सहायता नहीं मिली। बाप की मृत्यु होने पर वृन्दावन ने अपने चण्डीमण्डप * में एक निःशुल्क पाठशाला खोलकर उस सङ्कल्प को पूरा किया।

महल्ले में एक पेंशनयाफ़्ता बुड्ढे मास्टर रहते थे। उनसे ख़ुद वृन्दावन अँगरेज़ी पढ़ने लगा। वे रात को पढ़ा जाते थे। इसी से यह बात लोगों को मालूम नहीं हुई। गाँव में किसी ने भी नहीं जाना कि विन्दा वैष्णव अँगरेज़ी भी जानता है। पाँच-छः साल पहले, स्त्री (दूसरी) की मृत्यु के उपरान्त, वह इसी पढ़ाई में जुटा रहता था। अक्सर रात-रात भर पढ़ता था। सवेरे घर का काम-काज करता और अपना धन्धा देखता और दोपहर को, अपनी स्थापित की हुई पाठशाला में किसानों के लड़कों को पढ़ाता था। विधवा माता उससे फिर व्याह करने के लिए ज़ोर देकर कहती, तो वह अपने बच्चे को दिखाकर कहता था "जिसके लिए आदमी व्याह करता

* चण्डी देवी का मड़वा; बड़े आदमियों के मकान के सामने का वह बड़ा दालान जहाँ दुर्गा, काली आदि देवियों की पूजा समय-समय पर हुआ करती है।

है, वह तो हमारे है ही अम्मा, अब फिर ब्याह करने की क्या ज़रूरत ?" इसी तरह दो साल गुज़रे।

इसके बाद एक दिन एकाएक वृन्दावन ने कुञ्ज के घर के सामने ही कुसुम को देखा। वह नदी से नहा-धोकर बग़ल में कलसी दबाये, कमर पर रक्खे, घर आ रही थी। उन दिनों उसने जवानी में पैर रक्खा ही था। वृन्दावन उसे मुग्ध दृष्टि से देखता रहा। कुसुम जब घर के भीतर चली गई तब वह भी धीरे-धीरे वहाँ से चला गया। इस गाँव के सभी घर उसके जाने-पहचाने थे। इस कारण इस किशोरी को भी उसने पहचान लिया। वृन्दावन अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा था इसलिए वह अपनी माँ से जी खोलकर बात-चीत करता था,—कोई बात छिपाता नहीं था। उसने घर में आकर माँ से कुसुम की बात बेधड़क कहदी। मा ने कहा—यह भी कहीं हो सकता है भैया ?—उस घर को कलङ्क लग चुका है!

वृन्दावन ने जवाब दिया—लगा होगा अम्मा! लोग लाख कलङ्क लगावें तो भी वह तुम्हारी बहू है। जब ब्याह किया था तब कलङ्क के बारे में क्यों नहीं सोचा ?

मा ने कहा—यह सब तो तुम्हारे बाप देखते और सोचते थे बेटा। उन्होंने जो अच्छा समझा, सो कर गये।

वृन्दावन ने रूठकर कहा—"तो फिर यही अच्छा है। मैं जैसे हूँ वैसे ही रहूँगा। मेरे ब्याह के लिए अब तुम ज़ोर न देना"—इतना कहकर वह अन्यत्र चला गया।

इस घटना को तीन साल गुज़र गये। इस बीच में वृन्दावन की मा कुसुम को फिर अपने घर ले आने के लिए लगातार बहुत कुछ कोशिश करती रही, मगर फल कुछ नहीं हुआ। कुसुम किसी तरह राज़ी नहीं की जा सकी। उस की इस दृढ़ आपत्ति के दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि वह अपने सीधे-सादे, असमर्थ और अल्प-बुद्धि भाई को अकेला छोड़कर और कहीं जाकर निश्चिन्त नहीं रह सकती; उसका जी उसी के पास धरा रहेगा। दूसरा कारण पहले ही बतला चुके हैं। किसी तरह का सामाजिक विधि-विधान अगर न करना पड़ता, अगर वह योंही—सहज ही—पति के घर जाकर रह सकती, तो शायद उसका मन और शरीर इस तरह अपने भाई के अनुरोध का विरोध न करता; उसके यों ज़ोर देने के खिलाफ़ वह ज़बरदस्त 'नाहीं' न कर बैठती। किन्तु उसे यह असह्य होगा कि फिर कण्ठी-बद-लौवल अर्थात् घर-बैठौवल की रस्में अदा की जायँ; तरह-तरह के वैष्णवों के दल आकर जमा हों; उसकी मृत-माता के मिथ्या-कलङ्क की फिर चर्चा हो—गड़े मुर्दे उखड़ें, उसके विस्मृत बाल्य-जीवन की बातें कही-सुनी जायँ—इसी प्रसङ्ग में और भी न-जाने कौन-कौन ज़िक्र छिड़ें; महल्ले के अरोसी-परोसी सब कौतूहलवश तमाशा देखने आवें; उसकी सखी-सहेलियों की कौतुकपूर्ण आँखें टट्टर की दराज़ों से निःसंशय ताक-झाँक लगावें; और अन्त को वे अपने घर को लौटकर

हँसती हुई खुलासा शब्दों में कहें—'कोरी-चमारों की तरह कुसुम का भी निकाह उर्फ़ ब्याह हो गया!' छी-छी! इन बातों की कल्पना भी उसके लिए मृत्यु से बढ़कर है। ऐसा सोचने से भी लज्जा सिर झुका लेती है। जिन भले घर की लड़कियों के साथ उसने भी पढ़ा-लिखा है, एक साथ एक ही ढङ्ग से रह कर इतनी बड़ी हुई है, उनकी अपेक्षा आचार-व्यवहार में छोटे होने के ख़याल को, ग़रीब होने पर भी, वह अपने मन में स्थान नहीं दे सकती।

कल शाम को भाई से कुसुम की लड़ाई हो गई थी। ग़ुस्से के मारे उसने काठ के सन्दूक़ की चाबी भाई के पैरों के पास फेंक दी थी, और क्रोध के मारे झनककर कहा था कि अब वह इस घर से कोई वास्ता न रक्खेगी। आज सवेरे नदी से नहाकर घर आई तो देखा, घर में कुञ्ज का पता नहीं है, वह चला गया है। उसका फेरी का झब्बा भी नहीं है। मन ही मन हँसकर कुसुम ने कहा—"कल झिड़की खाकर दादा आज सवेरे ही भाग खड़े हुए हैं।" इसमें शक नहीं कि कल की ग़लती सुधारने के लिए ही वह भाग गया था; लेकिन कुसुम का अनुमान ठीक न था—वह ग़लती दूसरी ही थी। थोड़ी ही देर में वह प्रकट हो गई।

कुसुम को रोज़ बहुत तड़के उठकर घर का काम-धन्धा करना पड़ता था। दालान वग़ैरह बुहारकर गोबर से लीपती, छोटा-सा आँगन साफ़ करती, नदी से नहाकर पानी भर लाती

और फिर चूल्हा जलाकर भाई के लिए रसोई बनाती थी। कुञ्ज भोजन करके फेरी करने चला जाता। तब कुसुम, नित्य नियमानुसार, जप-पाठ वग़ैरह करती थी। जिस दिन कुञ्ज भोजन किये बिना चला जाता उस दिन दोपहर होने के पहले ही लौट आता था। आज भी कुसुम ने सोचा, अभी दादा के लौटने में बड़ी देर है। इससे वह फूल उतारने लगी। आँगन की बग़ल में कुछ फूलों—चमेली, जूही और गुलाब—के पेड़ थे। इनसे कुसुम को पूजा के लिए काफ़ी फूल मिल जाते थे। फूल उतारकर, सब तैयारी करने के बाद, कुसुम पूजा के आसन पर बैठी ही थी कि इतने में बाहर दरवाज़े पर दो बैल-गाड़ियाँ आकर खड़ी हुईं। कुसुम ने विस्मय के साथ देखा, एक अधेड़ औरत किवाड़े ठेलकर भीतर आँगन में आ खड़ी हुई। दोनों की आँखें चार हुईं, दोनों ने दोनों को एक नज़र देख लिया। कुसुम ने इस औरत को पहले कभी नहीं देखा था; तो भी उसकी नाक में तिलक-छापा और गले में माला-कण्ठी देखकर इतना उसने समझ लिया कि वह स्त्री, चाहे जो कोई हो, उसी की जाति की है।

प्रौढ़ा ने पास आकर हास्य-मण्डित मुख से कहा—तुम मुझे नहीं पहचानती बेटी, तुम्हारे दादा पहचानते हैं। कहाँ हैं कुञ्जनाथ?

कुसुम ने कहा—वे आज तड़के ही चले गये हैं। शायद देर में लौटें।

प्रौढ़ा अचरज करके कहने लगी—देर में कैसे लौटेंगेजी! कल वह अपने बहनोई को, और भी चार-पाँच लड़कों को—वे सब हमारे आत्मीय ही हैं, नाते में भानजे होवे हैं—सबको न्योत आये हैं। इसी से मैंने आज सवेरे ही वृन्दावन से कहा—भैया, बैल नहवाकर गाड़ी ले आ। चलूँ, आज मैं भी ज़रा बहू को देखकर 'आशीर्वाद' दे आऊँ।

सब वृत्तान्त सुनकर कुसुम सन्नाटे में आ गई। लेकिन फ़ौरन उसने अपने को सँभालकर, मस्तक पर आँचल ज़रा और खींचकर, चटपट सास के पैर छुए। फिर कोठरी से चटाई लाकर बिछा दी। चुपचाप खड़ी कुसुम की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखती हुई उसकी सास ने चटाई पर बैठकर हँसते-हँसते कहना शुरू किया—कल खा-पी चुकने पर वृन्दावन ने दिल्लगी में कहा—'मैं तो ऐसा बदनसीब हूँ कि कुञ्ज दादा ने, बड़े भाई के समान होकर भी, किसी दिन अपने घर बुलाकर एक लोटा पानी तक पीने के लिए मुझसे नहीं कहा।' कई दिन से मेरी ननद के लड़के भी मेरे यहाँ ठहरे हैं। कुञ्जनाथ हँसकर सभी को न्योता दे आये। सब जने आते ही होंगे।

कुसुम सिर झुकाये चुप बैठी रही।

वृन्दावन की माँ किसी बात में साधारण नीची जाति की औरतों के समान न थीं। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। कुसुम का भाव देखकर सहसा उन्हें सन्देह हुआ कि इसमें कुछ गोलमाल ज़रूर है। असल बात जानने के लिए उन्होंने

सन्देह के स्वर में पूछा—अच्छा बहू, कुञ्ज क्या तुमसे कुछ कह नहीं गया ?

कुसुम ने घूँघट के भीतर सिर हिलाकर जनाया—नहीं।

किन्तु यह कुछ उनकी समझ में न आया। बल्कि उन्होंने यही समझा कि वह कह गया है। इसी से सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—"तब भी ग़नीमत है।" इसके बाद कुञ्जनाथ के सम्बन्ध में कहना शुरू किया—मैं तो डर रही थी, मेरा पागल लड़का शायद भूल न गया हो! जान पड़ता है, वह कुछ सौदा लेने गया है, अभी आ जायगा। यह लो, सब लड़के भी वृन्दावन के साथ आ पहुँचे।

"कुञ्ज दादा!" कहकर एक आवाज़ देने के साथ ही वृन्दावन आँगन में आ गया। उसके साथ और भी तीन-चार लड़के—फुफेरे भाई—थे। वृन्दावन की माँ ने कहा—कुञ्ज कहीं गया है। बहू, कोई शतरञ्जी हो तो घर के भीतर बिछा दो, ये लोग बैठ जायँ।

कुसुम चटपट उठी, और अपने भाई की कोठरी में एक कम्बल बिछाकर चिलम लेकर तमाखू भरने चली। यह देख कर वृन्दावन ने हँसते हुए कहा—इसकी कोई ज़रूरत नहीं; हम लोग तमाखू नहीं पीते।

चिलम रखकर कुसुम रसोईघर में एक खूँटी के सहारे खड़ी-खड़ी अपने मूर्ख भाई की करतूत पर खिझलाने और अपना कर्तव्य सोचने लगी। दादा इतना बड़ा हुआ, उसको

तनिक भी समझ नहीं है। दूसरों को न्योता देकर आप ग़ायब हो गया! कल से आज तक इसकी चर्चा कैसी, आभास तक नहीं दिया। यह कैसे घोर सङ्कट में, अत्यन्त असमञ्जस में, उसे डालकर आप खिसक गया; यह न सोचा कि असहाय, असमर्थ अबला—ख़ाली हाथ—इतने आदमियों को खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध कैसे करेगी! क्रोध, अभिमान, खीझ, लज्जा और अवश्य होनेवाले अनिवार्य अपमान की आशङ्का से आकुल कुसुम की आँखों में आँसू भर आये। कल ही से उसके यहाँ चावल, दाल वग़ैरह सभी सामान चुक गया है। आज सबेरे नहाने के लिए जाने से पहले भी वह एक बार सोच चुकी थी कि लौटकर दादा को बाज़ार भेज दूँगी। लेकिन लौटने पर दादा का दर्शन दुर्लभ हो गया।

कोई ग़लती या अपराध बन पड़ने पर कुञ्ज अपनी इस छोटी बहन को सचमुच इतना डरता था, जितना कि साधारणतः नौकर लोग कड़े मिज़ाज के मालिक को भी नहीं डरते। जिन बड़े आदमियों के घर में केवल भोजन कर आने के अपराध पर कुसुम इतना नाराज़ हुई, उन्हीं लोगों को—एक नहीं, पाँच-पाँच छः-छः को—बातों ही बातों में, सनक की झोंक में, न्योत आने का गुरुतर अपराध कुञ्ज कर आया था। यह ख़बर देने का दुस्साहस वह किसी तरह न कर सका। ऐसा साहस न कर सकने के कारण ही वह तड़के उठते ही भाग खड़ा हुआ। कुसुम समझ गई कि वह सन्ध्या होने से पहले

कभी न आवेगा; और यह समझकर ही वह विचलित एवं व्याकुल हो उठी थी। सबसे बढ़कर आफ़त यह हुई कि जिस सन्दूक़ के भीतर उसकी जमा की हुई रुपये-पैसे की कुछ पूँजी थी उसकी कुञ्जी भी उसके पास नहीं थी। हाथ में एक पैसा तक न था।

पाँच मिनट के लगभग इसी उलझन में खड़े-खड़े सोचने पर भी जब कोई उपाय न सूझा तब एकाएक उसका सारा क्रोध, सारी झल्लाहट, वृन्दावन के सिर हो गई। वास्तव में सारा दोष तो उसी का है। क्यों वह उसके निर्बोध भाई को रास्ते से पकड़ ले गया, और फिर उससे ऐसी दिल्लगी ही क्यों की! वह कौन है, जो दादा उसे अपने घर बुलाकर खिलावे-पिलावे?

इधर तीन साल से कितने ही बहाने करके, तरह-तरह के छल करके, वृन्दावन इस रास्ते आता-जाता रहा है। कितने ही उपायों से दोनों भाई-बहनों का मन अपने अनुकूल करने की, उनके हृदय की थाह लेने की, चेष्टा उसने की है। अक्सर सवेरे-शाम, बिना किसी प्रयोजन के, कुञ्ज के घर के सामने की राह से वह निकला है। इस घर की ग़रीबी का हाल उससे छिपा नहीं है। इसी कारण, हम लोगों को लज्जित अथवा अपमानित करने के लिए ही, उसने यह कौशल रचा है।

कुसुम काठ की पुतली सी वहाँ खड़े-खड़े उमड़े हुए आँसू पोंछ रही थी। वह बड़ी आनवाली है; पर इस समय अकेले क्या उपाय कर सकती है?

वृन्दावन की माता कोठरी में जा बैठी थीं, और अन्य लड़कों से बातचीत कर रही थीं। मगर उसके लड़के की आँखें कोठरी के बाहर फिर रही थीं। एकाएक रसोईघर के भीतर कुसुम पर दृष्टि पड़ते ही दोनों की आँखें चार हुईं। वृन्दावन को जान पड़ा, कुसुम ने इशारे से उसे जैसे बुलाया। एक सेकिण्ड के लिए उसका सारा हृदय उन्मत्त की तरह उछल पड़ा, और स्थिर हो गया। उसने सोचा, यह आँख की ग़लती हो सकती है—यह तो असम्भव ही है। अचानक कभी सामना हो जाने पर जो मुँह ढककर तेज़ी से चली जाती है, जिसकी कठिन विमुखता या वितृष्णा की बातें वह अनेक बार स्वयं कुञ्ज के मुँह से सुन चुका है, वह ख़ुद उसे बुलावेगी ? यह होने का ही नहीं। वृन्दावन ने दूसरी ओर आँख कर ली। मगर रहा भी न गया। जहाँ पर नज़र मिली थी उधर ही फिर देखा। ठीक, वही बात है! कुसुम उसी की ओर लक्ष्य करके ताक रही थी, अब हाथ हिला-कर बुलाया।

वृन्दावन डरता हुआ सा उठकर पास गया। रसोईघर के किंवाड़े के पास खड़े होकर उसने धीरे से पूछा—क्या मुझे बुलाया है ?

कुसुम ने वैसे ही धीरे से कहा—हूँ।

वृन्दावन और ज़रा आगे खिसक आया। पूछा—क्यों ? कुछ काम है ?

कुसुम ने दम भर ठहरकर बहुत ही दबी आवाज़ में कहा—तुमसे यही पूछना है कि हमारे जैसे दीन-दुखी लोगों को नीचा दिखाने में तुम्हारे जैसे बड़े आदमियों को क्या नामवरी मिलेगी ?

एकाएक यह कैसा अभियोग! वृन्दावन चुपचाप खड़ा रहा।

कुसुम ने और अधिक कठोर भाव से कहा—तुम नहीं जानते, हमारे दिन किस तरह कटते हैं, किस कष्ट से गुज़र होता है? फिर दादा से क्यों ऐसी दिल्लगी की? क्यों इतने आदमियों को साथ ले आये ?

वृन्दावन पहले कुछ सोच ही न पाया कि इस अभियोग में क्या सफ़ाई दे। किन्तु स्वभाव से ही वह अधीर होनेवाला आदमी नहीं है, किसी दशा में वह अधिक विचलित नहीं हो उठता। दम भर चुप रहकर, अपने को सँभालकर, उसने सहज और शान्त भाव से पूछा—कुञ्ज दादा कहाँ हैं ?

कुसुम—नहीं जानती। मुझसे कुछ कह-सुन नहीं गये, सवेरे उठकर चल दिये।

वृन्दावन और दम भर चुप रहकर बोला—चल दिये तो क्या हुआ। वह नहीं हैं, मैं तो हूँ। तो घर में खाने-पीने का सामान कुछ भी नहीं है ?

कुसुम—कुछ भी नहीं; सब चुक गया। मेरे पास रुपये भी नहीं हैं।

वृन्दावन—कुछ चिन्ता नहीं है। इस गाँव में तुम लोगों की तरह मुझे भी सब लोग जानते हैं। मैं जाकर बनिये की दूकान से सब सामान ख़रीदकर उसी के हाथ भेजे देता हूँ। मुझे अँगोछा दो। मैं नहा-धोकर लौटूँगा। मा पूछें, तो कह देना, मैं नहाने गया हूँ। खड़ी न रहो, जाओ।

कुसुम ने भीतर से अँगोछा लाकर उसके हाथ में दे दिया।

उसी अँगोछे को सिर से लपेटकर वृन्दावन ने हँसते-हँसते कहा—तुम कुञ्ज दादा की बहन होती हो इसी से वह भाग गये, अगर और कुछ होतीं तो शायद इस तरह छोड़कर न जा सकते।

"ठीक है, सभी नहीं छोड़ सकते लेकिन कोई-कोई छोड़ सकते हैं।" धीरे-धीरे यह कह कर कुसुम ने कनखियों से वृन्दावन के चेहरे को देखा कि उसके इस टहोके ने वृन्दावन को कुछ चोट पहुँचाई या नहीं।

वृन्दावन ने जाने के लिए पैर आगे बढ़ाया था, उसे खींच लिया। फिरकर, ठिठककर, धीमे स्वर में कहा—सम्भव है, तुम्हारा यह भ्रम किसी दिन दूर भी हो जाय। लड़कपन में अपनी माता के किसी बुरे-भले काम की ज़िम्मेदारी जैसे तुम पर नहीं लादी जा सकती, वैसे अपने बाप की ग़लती के लिए मैं भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता। ख़ैर, जाने दो इन बातों को। इसके लिए झगड़ने का समय यह नहीं है। जाओ, रसोई की तैयारी करो।

कुसुम—रसोई की क्या तैयारी करूँ? मेरा सिर काट कर पकाने से अगर तुम्हारा पेट भरे तो कहो वही करूँ।

वृन्दावन दो-एक क़दम गया था, फिर लौट आया। कुसुम की कटूक्ति का कुछ उत्तर न देकर उसने कण्ठ-स्वर और भी धीमा करके आहिस्ते से कहा—मुझे जो जी चाहे, सो कह सकती हो; मुझको सब सुनना और सहना ही पड़ेगा। लेकिन क्रोध के वश होकर अपनी सास से कोई कड़ी या कड़वी बात न कह बैठना। उन्हें थोड़े ही में बड़ी चोट पहुँचती है।

कुसुम ने क्रोध भरी दबी आवाज़ में फिस-फिस करके कहा—मैं पशु नहीं, आदमी ही हूँ; इतना समझती हूँ।

वृन्दावन—सो तो जानता हूँ। समझ की अपेक्षा क्रोध की मात्रा तुममें अधिक है, यह भी जानता हूँ। और एक बात तुमसे कहे जाता हूँ कुसुम! मा नहाकर सीधे इधर चली आई हैं, अभी जप-पूजा आदि कुछ नहीं किया। उनसे पूछकर पहले उसी का प्रबन्ध कर दो। बस, मैं जाता हूँ।

कुसुम—जाओ। लेकिन कहीं बैठकर बातों में न फँस जाना।

वृन्दावन ज़रा हँसकर बोला—नहीं जी। लेकिन देर करके झिड़की खाने के लिए भी जी बहुत चाहता है। और किसी दिन के लिए आशा दो तो आज जल्दी ही लौट आऊँ।

इसके उत्तर में कुसुम ने "सो फिर देखा जायगा।" कह कर रसोईघर के भीतर जाना चाहा। सहसा वृन्दावन ने एक हलकी साँस छोड़कर बहुत कोमल स्वर में कहा—आश्चर्य है! इस समय एक बार भी यह नहीं जान पड़ा कि आज तुमने पहले-पहल मुझसे बातचीत की है, ऐसा जँचता है जैसे कितने ही युग-युगान्तर से तुम मुझ पर इसी तरह स्नेह का शासन करती आ रही हो। भगवान् के हाथ का बाँधा हुआ यह कैसा अद्‌भुत हृदय का बन्धन है कुसुम!

कुसुम ने खड़े-खड़े सब सुन लिया, लेकिन कुछ जवाब नहीं दिया।

वृन्दावन के चले जाने पर उसकी बात याद करके सहसा कुसुम का शरीर काँप उठा। वह रसोईघर के भीतर जाकर जड़ सी बैठ रही। अपनी शिक्षा के अभिमान से कुसुम जिसे इतने दिनों तक एक अपढ़ गँवार किसान समझ कर कुछ गिनती ही न थी, उसी की आज की बातचीत और बरताव देखने पर उसका हृदय जैसे उसके सम्बन्ध में एक नये आनन्द और नई तृष्णा के साथ उत्सुकता प्रकट करने लगा।

३

उस दिन सन्ध्या होने के पहले, अपने घर के लिए चलने से प्रथम, वृन्दावन की माँ ने कुसुम को पास बुलाकर आँसू भरे गद्गद स्वर में कहा—"बहू, आज का सारा दिन कैसे

आनन्द से यहाँ बीता, मुझे कैसी प्रसन्नता प्राप्त हुई, यह मैं ही जानती हूँ, ज़बान से क्या कहूँ। सुखी रहो बेटी।" अब उन्होंने धोती के आँचल से एक जोड़ा सोने के कड़े खोले और अपने हाथ से कुसुम के हाथों में पहना दिये।

गुप्त रूप से वृन्दावन की सहायता लेकर कुसुम ने आज का सब इन्तज़ाम किया था। पर यह बात वृन्दावन की माँ को पीछे मालूम हो गई थी। ख़ास कर यही देखकर उनका हृदय आशा और आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। कुसुम ने गले में आँचल डालकर सास को प्रणाम किया, उनकी चरण-रज माथे में लगाई, फिर उठकर चुपचाप खड़ी हुई। सास-बहू के बीच इस बारे में कोई बातचीत नहीं हुई। गाड़ी पर चढ़कर सास ने बहू को लक्ष्य करके कहा—कुञ्ज से मुलाक़ात नहीं हुई बेटी। पागल लड़का भागकर कहीं दिन भर घूमता रहा होगा। अच्छा, कल उसे ज़रा मेरे पास भेज तो देना।

कुसुम ने सिर हिलाकर वैसा करना स्वीकार कर लिया।

वृन्दावन के बाबा (पितामह) ने अपने घर में गौर-निताई की मूर्ति स्थापित की थी। उसी मूर्ति के पास बैठकर नित्य, बहुत रात गये तक, वृन्दावन की मा माला जपा करती थीं। आज भी जप कर रही थीं। उनका पोता अभी बच्चा ही था (यह वृन्दावन की दूसरी स्त्री से उत्पन्न था)। वह अपनी दादी की गोद में सिर रखकर सो गया था। दादी-

पोते, दोनों जिस जगह पर थे, वहाँ दीपक की छाया पड़ने से अँधेरा था। इसी कारण वृन्दावन ने ठाकुरद्वारे में घुसकर भी पहले इन्हें नहीं देखा। वह ठाकुरजी के चरणों की वेदी के पास घुटने टेककर बैठ गया। कुछ देर तक मन ही में प्रार्थना करने के बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके उठते ही उसकी नज़र माता पर पड़ी। मन में बहुत ही लज्जित होकर भी उसने ज़ाहिरा हँसकर कहा—ऐसे अँधेरे में क्यों बैठी हो अम्मा?

माता ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—"होगा, हर्ज ही क्या है। आ, दमभर मेरे पास बैठ जा।" वृन्दावन पास आकर बैठ गया।

उसके लज्जित होने का विशेष कारण था। उस समय रात पहर भर से अधिक बीत चुकी थी। ऐसे वेवक़्त वह ठाकुरजी को प्रणाम या प्रार्थना करने कभी नहीं आता था। आज उसके आने का कारण और ही था। आज आशातीत सौभाग्य-सूचना के अनन्य आनन्द से उसका हृदय परिपूर्ण हो गया था, उसे आज का दिन सार्थक और अभिनन्दनीय प्रतीत हो रहा था। वही अपना आनन्द और हृदय की कृतज्ञता प्रकट करने के लिए, भक्ति-पुष्पाञ्जलि अर्पण करने के लिए, वह गुप्त-रूप से भगवन्मूर्ति के निकट आया था। किन्तु माता कहीं उसके मन का भाव, जी की बात, ताड़ न गई हो—यही सोच कर लज्जा के मारे वह संकुचित हो उठा था।

थोड़ी देर बाद माता ने सोये हुए पोते के सिर और मुँह पर हाथ फेरते-फेरते उच्छ्वसित स्नेह की उमङ्ग से आर्द्र स्वर में कहा—बे-माँ के अपने इस रत्ती भर के एकमात्र वंशधर को छोड़कर कहीं मैं हिल नहीं सकती; घर में इसे डालकर बाहर पैर निकालना दूभर हो गया है। किन्तु आज मुझे जान पड़ रहा है, वृन्दावन, जैसे किसी ने मेरे सिर पर से भारी बोझ उतार लिया है। उसे जल्दी घर ले आ बेटा, मैं उसको सब सौंप कर—समझकर—ज़रा छुट्टी लूँ, और सुस्ताऊँ। अब कुछ दिन काशी, वृन्दावन, अयोध्या के दर्शन की बड़ी अभिलाषा हो रही है।

आज वृन्दावन के अन्तःकरण में भी आशा और विश्वास का ऐसा ही सोता फूट निकला था, और उसका मन उसी में ग़ोते लगाकर मगन बना हुआ था। फिर भी लज्जा-मिश्रित हँसी हँसकर उसने कहा—वह क्यों आने लगी माँ?

माँ ने सन्देह-लेश-शून्य स्वर में कहा—आवेगी क्यों नहीं! ज़रूर आवेगी। उसके आने पर ही तो मुझे छुट्टी मिलेगी। मैंने ही बड़ी भूल की वृन्दावन, जो अब तक ख़ुद उसके घर नहीं गई। लौटते समय अपने हाथ के कड़े उसे पहनाकर मैंने असीस दी। बहू भी मेरे पैर छूकर चुपचाप खड़ी रही। तभी मैंने समझ लिया था कि अब मेरे सिर पर से गृहस्थी का बोझ उतर गया। तू देख लेना, जल्दी ही, जिस दिन अच्छी साइत मिल गई, घर की लक्ष्मी को घर ले आऊँगी।

वृन्दावन ने दमभर चुप रहकर पूछा—मगर वह आकर तुम्हारे इस वंशधर को देखे-सुनेगी न ?

माँ फ़ौरन् कह उठी—देखे-सुनेगी नहीं तो क्या! यह डर मुझे नहीं है।

वृन्दा०—क्यों नहीं है माँ ?

माँ ने कहा—मैं सोना पहचानती हूँ वृन्दावन! हाँ, अभी यह अवश्य नहीं कह सकती कि वह खरा है कि नहीं। फिर भी यह मैं तुझसे निश्चय के साथ कहे देती हूँ कि वह पीतल या मुलम्मा कभी नहीं है। अगर ऐसा न समझती तो अपनी ऐसी बँधी और बनी हुई गिरिस्ती में उसे ले आने की चर्चा ही न चलाती। हाँ रे वृन्दावन, बहू क्या तुझसे पहले से इसी तरह बोलती-चालती रही है ?

"कभी नहीं बोलती थी माँ ? आज शायद सङ्कट में पड़कर ही"—कहते-कहते ज़रा हँसकर वृन्दावन रुक रहा।

माँ ने दमभर चुप रहकर कुछ गम्भीर होकर कहा—यह ठीक कहा तूने भैया। उसका कुछ दोष नहीं है; ऐसे मौक़े पर लाचार होकर सभी ऐसा करते हैं। आदमी सङ्कट में पड़कर, कठिनाई के समय, उसी के पास दौड़कर जाता है जिसे वह यथार्थ में अपना सगा समझता है। मैं तो स्त्री की जाति हूँ बेटा, तो भी उसने अपने सङ्कट का हाल मुझे नहीं बतलाया—तुझी को जताया।

वृन्दावन चुपके बैठा हुआ सुन रहा था।

माता ने फिर कहना शुरू किया—"अभी मुझे एक और ज़रूरी काम करना है, कुञ्जनाथ का भी घर बसा दूँ,—" इतना कहकर वे आप ही हँस पड़ीं। अन्त को कहा—वह भी अच्छा आदमी है, महल्ले भर को न्योता देकर आप घर से भाग गया। पीछे चाहे जो हो, कुछ परवा नहीं।

वृन्दावन चुपचाप हँसने लगा।

माँ ने कहा—सुनती हूँ, अपनी बहन को वह बहुत दबता है। बड़ा भाई होकर भी छोटे भाई की तरह दबकर रहता है। कोई-कोई ऐसे रोब-दाब के आदमी हैं वृन्दावन, जिन्हें डरना ही पड़ता है, फिर उनकी अवस्था चाहे जितनी हो। मेरी बहू भी उसी प्रकृति की है—शान्त, लेकिन कड़ी। मैं ऐसा ही आदमी तो चाहती हूँ—जिस पर बोझ डालने से वह उसे उठा सके। तभी तो मैं गृहस्थी के झगड़े छोड़कर, उधर से निश्चिन्त होकर, बाहर घूम-फिर सकूँगी।

क्षण भर चुप रहकर फिर कह उठीं—एक ही दिन की भेंट में उसे कितना प्यार करने लगी हूँ, यह बताना कठिन है। मुझे ख़ुद इस बात पर बड़ा अचरज है। शाम से यही मन में बस रहा है कि कब उसे घर ले आऊँगी, कब फिर उसे देखूँगी।

वृन्दावन लज्जा से अभिभूत हो रहा था। यह चर्चा दबाने के लिए उसने कहा—हाँ, कुञ्ज दादा का घर बसाने की बात क्या कह रही थीं तुम?

माँ ने कहा—मैं यह कह रही थी कि बहू को यहाँ लाने के पहले ही कुञ्ज का घर बसा देना मेरा फ़र्ज़ है। कल बहुत तड़के उठकर गोपाल से गाड़ी ले आने के लिए तू आज कह रख। मैं नलडाँगा (गाँव) जाऊँगी। वहाँ गोकुल बैरागी की लड़की बड़ी अच्छी है। मुझे तो बहुत पसन्द है। देखने-सुनने में बुरी नहीं है। इसके अलावा—

बात पूरी होने के पहले ही हँसकर वृन्दावन कह उठा—इसके अलावा उसके वही एक लड़की है, और गोकुल जमा-जायदाद भी कम नहीं छोड़ गया है, क्यों न माँ?

माँ भी हँसने लगीं। बोलीं—यह बात तो सच है भैया; कुञ्ज को रुपये-पैसे की बड़ी ज़रूरत है। नहीं तो सिर्फ़ ब्याह कर लेना ही तो मरदूमी नहीं है। जोरू को खिलाने-पिलाने-पहनाने का बूता भी तो होना चाहिए। फिर लड़की ही क्या बुरी है। तनिक रङ्ग ज़रूर काला है, मगर मुँह की गढ़न बुरी नहीं है। ख़ैर, देखूँ, कल क्या कर सकती हूँ।

वृन्दावन ने सिर हिलाकर कहा—मैं भी जाकर साइत पूछता हूँ माँ। तुम ख़ुद जब जा रही हो तब ख़ाली न लौटोगी—इसका मुझे निश्चय है।

४

कुञ्जनाथ के ब्याह की, देने-लेने की, खिलाने-पिलाने की, सभी बातें लगभग पक्की करके दूसरे दिन तीसरे पहर वृन्दावन की माँ अपने घर लौट आई।

उस समय चण्डीमण्डप के सामने क़तार बाँधकर खड़े हुए लड़के पहाड़े पढ़ रहे थे, और वृन्दावन एक किनारे खड़ा सुन रहा था। बहेली सामने आकर ठहरते ही वृन्दावन का लड़का चरन गाड़ी से उतर पड़ा, और शोर-गुल के द्वारा प्रसन्नता प्रकट करता हुआ बाप के पास दौड़ा आया। माईं पसन्द करने के लिए वह भी दादी के साथ गया था। उसे गोद में उठाकर वृन्दावन गाड़ी के पास आ खड़ा हुआ। माँ गाड़ी से उतर रही थीं। उनके प्रसन्न मुख को देखकर उसने पूछा—किस दिन मुहूर्त ठीक कर आईं माँ ?

"इस महीने के अन्त में। फिर लगन ही नहीं है। तू भीतर चल। बहुत सी बातें कहनी-सुननी हैं"—कहकर वे हँसी-ख़ुशी के साथ भीतर चली गईं।

ख़ुद उनकी बहू घर आवेगी, इस आनन्द से उनका हृदय परिपूर्ण हो रहा था। इसके सिवा केवल एक ही दिन गिरिस्ती के कामों में कुसुम की निपुणता देखकर वे सच-मुच उसे बहुत अधिक प्यार करने लगी थीं। आप सुखी होंगी; एकमात्र पुत्र को यथार्थ सुख पहुँचावेंगी; बहू और बेटे के हाथ में घर-बार और सारी गिरिस्ती सौंपकर तीर्थ-यात्रा करने जायँगी—जी भरकर धर्म-कर्म कर लेंगी; इन सब मनोरथों अथवा सुखमय स्वप्नों के आगे उन्हें और सभी काम साधारण और सहज-साध्य हो गये थे। इसी कारण गोकुल की विधवा के सभी प्रस्तावों पर वे राज़ी हो गईं। यहाँ

तक कि ब्याह में कन्या-पक्ष का सारा ख़र्च अपने सिर लादना मञ्जूर करके वे ब्याह पक्का कर आई थीं !

दिन को उन्होंने कुछ खाया-पिया न था। सहज में वे कहीं कुछ खाने-पीने के लिए राज़ी न होती थीं। वृन्दावन को यह मालूम था। उसने पाठशाला में जाकर लड़कों को छुट्टी दे दी। भीतर आकर माता को देखा, वे खाने-पीने का कुछ भी उद्योग न करके चुपचाप बैठी हैं। वृन्दावन ने कहा—निराहार उपास करके सोचने से सब गड़बड़ हो जाता है। औरों के लिए पीछे सोचती रहना, पहले खाने-पीने का प्रबन्ध तो करो।

माँ—वह सन्ध्या के बाद होता रहेगा—नहीं, हँसी नहीं करती हूँ रे, अब देर करना ठीक न होगा। उस पागल के पास न तो कुछ रुपया-पैसा है, न मदद करनेवाले आदमी ही हैं। मुझी को सब बोझ उठाना पड़ेगा। लड़की की माँ तो बड़ी ही सख़्त देख पड़ती है; सहज में किसी तरह राज़ी न होने आती थी। मगर मैं भी छोड़नेवाली न थी। अरे वाह ! देख, वह भी आ ही गया ! हज़ार बरस उमर हो तेरी भैया। तेरी ही बातें हो रहीं थीं। आओ, बैठो। आज ऐसे बेवक़्त कैसे आ गये ?

सचमुच दूसरे गाँव से किसी के घर आने का यह समय न था।

घर में घुसते ही इस तरह का विचित्र स्वागत देखकर कुञ्जनाथ पहले तो सिटपिटा गया। उसके बाद शरमाया हुआ सा पास आकर प्रणाम करके बैठ गया।

वृन्दावन ने दिल्लगी करते हुए कहा—अच्छा कुञ्ज दादा, तुम्हें कैसे ख़बर लग गई? क्या रात भर भी चुपचाप रहा नहीं गया? कल सबेरे ही आकर सुन लेते सब!

माँ मुसकिरा दीं। लेकिन कुञ्ज ने इधर कुछ ध्यान ही नहीं दिया। वह आँखें ऊपर चढ़ाकर अपनी ही कहने लगा—बाप रे! बहन क्या है, पुलीस का दारोग़ा है?

वृन्दावन ने मुँह फेरकर हँसी छिपाई। माँ के होठों पर हँसी की दबी हुई रेखा झलक गई। उन्होंने पूछा—जान पड़ता है, कुछ कह सुनकर बहू ने भेजा है?

इस प्रश्न का उत्तर न देकर कुञ्ज बहुत गम्भीर भाव से मुँह बनाकर बोला—अच्छा माँ, तुममें भूलने की यह कैसी बुरी आदत है! तुम्हीं बताओ, अगर कुसुम की नज़र न पड़ती, और और ही कोई देख पाता तो कितना बड़ा अनर्थ हो जाता?

बात कुछ समझ में न आने के कारण कुछ घबराहट के साथ वे कुञ्ज का मुँह ताकने लगीं।

वृन्दावन ने पूछा—मामला क्या है कुञ्ज दादा?

मगर रहस्य को तत्काल ही खोलकर अपने को हलका करना कुञ्ज को पसन्द न आया। इसी से उसने वृन्दावन के इस प्रश्न पर ध्यान ही नहीं दिया। उसकी माँ से अलबत कहा—अच्छा, पहले यह कहो कि क्या खिलाओगी? तब फिर मैं बतलाऊँगा।

अब की माँ हँस पड़ीं, बोलीं—सो अच्छा तो है भैया। यह तो तुम्हारा ही घर है। क्या खाओगे, तुम्हीं बताओ ?

कुञ्ज ने कहा—अच्छा, और किसी दिन खा-पी लूँगा। पहले बताओ, तुम्हारी क्या चीज़ खो गई है ?

वृन्दावन की माँ चिन्तित हो उठीं। ज़रा थमकर सन्देह के स्वर में कहा—कहाँ, कुछ भी तो नहीं खोया मेरा !

सुनकर कुञ्ज ऊँचे स्वर से हा-हो करके हँसने लगा। फिर अपनी चद्दर के भीतर से दोनों सोने के कड़े निकाल-कर सामने रखकर बोला—"तो ये तुम्हारे नहीं हैं ? क्यों ?" यों कहकर वह बड़ी ख़ुशी के साथ आप ही आप हँसने लगा।

ये कड़े वही थे जिन्हें कल, इसी समय, बड़े स्नेह के साथ वे अपने हाथ से बहू के हाथों में पहनाकर आशीर्वाद दे आई थीं। आज वही अलङ्कार, वही आशीर्वाद, उसने मूर्ख कुञ्ज के हाथों फेर दिया है।

वृन्दावन कड़ों पर एक नज़र डालकर माँ की ओर देखते ही डर गया। उनका मुँह पीला पड़ गया था, जैसे उसमें एक बूँद भी ख़ून की न रह गई थी। अस्तोन्मुख सूर्य के धुँधले प्रकाश में उनका चेहरा मुर्दे का सा मटमैला दिखाई पड़ रहा था। वृन्दावन के अपने हृदय के भीतर क्या हो रहा था, सो तो केवल अन्तर्यामी ने ही जान पाया। किन्तु उसने प्रबल चेष्टा करके तुरन्त ही अपने तईं सँभाल लिया,

और माँ के पास खिसक कर सहज शान्त भाव से कहा—"हमारे बड़े भाग्य हैं माँ, जो भगवान् ने हमारी चीज़ हमीं को फेर दी। ये तुम्हारे हाथ के कड़े हैं माँ, वह कैसे इन्हें पहन सकती?—कुञ्ज दादा, आओ, बाहर चलकर ज़रा बैठें।" इतना कहकर, कुञ्ज का हाथ पकड़ कर, ज़बरदस्ती ही घसीटकर वह उसे लिये बाहर चला गया।

कुञ्ज ठहरा सीधा आदमी, इसी से इस अ-समय में बड़ी ख़ुशी के साथ इतनी राह चलकर आया था। आज दोपहर के समय, खा-पी चुकने के बाद, जब हाथ में कड़ों की जोड़ी लिये मलिन-मुखी कुसुम ने शुष्क कोमल स्वर में कहा—"दादा, कल वे लोग भूलकर इसे यहीं छोड़ गये हैं। तुम जाकर दे आओ।" तब आनन्द की अधिकता से अन्धे हो रहे कुञ्ज को बहन के मलिन मुख की ओर ध्यान देने का अवकाश भी नहीं मिला।

कुञ्जनाथ एँच-पेंच समझ नहीं सकता। बहन की बात सच नहीं है, या कोई किसी को इतनी क़ीमती चीज़ यों ही दे सकता है, और दूसरा आदमी उसे ग्रहण नहीं करता—फेर देता है, ऐसे असम्भव मामलों में उसकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती थी। इसी से राह भर वह केवल यही सोचता आया था कि खोई हुई चीज़ को इस तरह—अप्रत्याशित रूप से—अकस्मात् पाकर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हो उठेंगे, उसे बहुत-बहुत आशीर्वाद और धन्यवाद उनसे मिलेंगे इत्यादि।

लेकिन यहाँ तो वैसी कोई बात नहीं हुई। जो हुआ वह भला है या बुरा, यह भी ठीक-ठीक कुञ्ज की समझ में नहीं आया। किन्तु इतना बड़ा एक काम करके भी माँ के मुँह से कोई अच्छी बात या आशीर्वाद न सुन पाने से उसका मन बहुत ही खिन्न हो गया। वल्कि वृन्दावन उसे जैसे माँ के सामने से बाहर खेद लाया है, इस प्रकार की एक लज्जा-जनक अनुभूति क्रमशः उसके हृदय को भारी शिला की तरह कुचलने लगी। वह चुपचाप बैठा रहा। उसके मुँह पर लज्जा और विषाद की गहरी छाप देख पड़ रही थी। उसके पास बैठा हुआ वृन्दावन भी चुप था। बातचीत करने लायक़ दशा उसकी न थी—उसका हृदय भीतर अपमान की आग से जल-भुन रहा था। अपमान उसका अपना नहीं, माता का।

वृन्दावन को अपने भले-बुरे और मान-अपमान का तो ध्यान ही उस समय नहीं था। मृत्यु की यातना जैसे अन्य सब प्रकार की यातनाओं को दूर करके अकेली ही—सर्वोपरि हो कर–रहती है, वैसे ही माता के अपमान-पीड़ित विवर्ण मुख की स्मृति भी, उसकी अन्य सब प्रकार की अनुभूति को ग्रसकर, एकमात्र निविड़ भीषण अग्निशिखा की तरह हृदय के भीतर जल रही थी।

सन्ध्याकाल का अन्धकार गहरा हो आया। कुञ्ज ने धीरे से कहा—अच्छा, अब जाता हूँ भाई।

वृन्दावन ने विह्वल की तरह कुञ्ज की ओर देखकर कहा—जाओ, फिर किसी दिन आना।

कुञ्ज चला गया। वृन्दावन उसी जगह लेटकर सोचने लगा—माता की कैसी आशा, कैसी भविष्य की कल्पना दम-भर में मिट्टी में मिल गई! अब कौन ऐसा उपाय है जिससे वह माता का दुःख दूर करे—उन्हें सुस्थ, शान्त बनावे! उनके पास जाकर सान्त्वना के कौन शब्द वह कहेगा?

सबसे बढ़कर निष्ठुर परिहास यह है कि जिसने इस तरह सब आशाएँ निर्मूल करके उसकी दिन भर की उपासी, थकी हुई, अवसन्न, संन्यासिनी माता को ऐसी चोट पहुँचाई वह उसी की स्त्री है, उसी को वह प्यार करता है!

५

कल एक ही दिन के मिलने-जुलने में कुसुम ने जैसे अपनी सास और पति को पहचान लिया था, वैसे ही उन्होंने भी उसे ठीक पहचान लिया होगा, यही कुसुम की धारणा थी। इस बारे में उसे रत्ती भर संशय न था।

आदमी की प्रकृति पहचानने में निपुण उक्त दोनों आत्मीयों के निकट दिन भर रहकर उन्हें पहचानने का सुयोग देना पड़ा, यह सोचकर कुसुम का हृदय एक अभूतपूर्व आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था। यही नहीं, उसने आप ही अपने को, अज्ञात रूप से, मुशकिल से कटनेवाले स्नेह के बन्धन में बाँध डाला था।

उसी स्नेह के बन्धन को आज अपने हाथ से तोड़कर जब कुसुम ने वह कड़े की जोड़ी लौटाने के लिए अपने भाई को दे दी और भोला-भाला कुञ्जनाथ बड़ी ख़ुशी से उसे देने चल दिया, तब घड़ी भर के लिए उसे उस घाव की वेदना असह्य जान पड़ी, और वह अपनी कोठरी में जाकर रोने लगी। जैसे आँखों के आगे स्पष्ट देख पड़ने लगा कि उसका यह निष्ठुर आचरण उन लोगों के लिए कितना अप्रत्याशित, आकस्मिक और कैसा कठोर मर्मभेदी होगा, और कैसी कड़ी चोट पहुँचावेगा; उस (कुसुम) के बारे में उन लोगों के मन का भाव क्या से क्या हो जायगा !

शाम हुए देर हो चुकी थी। कुञ्ज ने घर पहुँच कर चारों ओर अँधेरा पाया। बहन की कोठरी के सामने जाकर उसने कहा—कुसी, ओ कुसी ! दिया क्यों नहीं बाला ?

कुसुम अभी तक वैसे ही चुपचाप बैठी थी। भाई का प्रश्न कान में पड़ते ही लज्जित होकर चटपट उठ खड़ी हुई। बोली—अभी बालती हूँ दादा। तुम कब आये ?

"अभी, आ ही रहा हूँ" कहकर कुञ्ज अपना नारियल उठाकर चिलम भरने लगा।

दिया में न बत्ती थी, न तेल पड़ा था। इसी से दिया बालने में देर लगी। दिया जलाकर लौट आने पर कुसुम ने देखा, कुञ्ज कहीं चल दिया है।

नित्य की तरह आज रात को भी भोजन परोसकर कुसुम भाई के पास ही—कुछ दूर पर—बैठी रही। कुञ्ज मुँह फुलाये था। भोजन करते समय भी उसने कुछ बात-चीत नहीं की। जिस आदमी को बातचीत के आगे कुछ नहीं भाता, जिसकी बातों का सिलसिला समाप्त नहीं होने पाता, उसे सहसा आज इस तरह, इतनी देर तक, चुप्पी साधे देखकर कुसुम का हृदय आशङ्का से भर गया।

कोई अप्रीतिकर घटना अवश्य हुई है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु वह क्या है, मामला कहाँ तक बढ़ गया है, यह जानने के लिए कुसुम बेचैन हो उठी। उसके मन में रह-रहकर यही ख़याल उठता था कि वहाँ उन लोगों ने दादा का बहुत बड़ा अपमान किया है। क्योंकि छोटी-मोटी अपमानजनक घटना पर कुञ्ज इतना ध्यान देनेवाला नहीं। अगर ध्यान भी देता तो अब तक कब का भूल गया होता। कुञ्ज की प्रकृति को वह ख़ूब जानती है।

अब चुप रहना कुसुम के लिए असम्भव हो गया था। इसीसे भोजन समाप्त कर कुञ्ज जैसे चौके पर से उठने लगा वैसे ही वह पूछ बैठी—हाँ दादा, किसको दे आये कड़े?

कुञ्ज ने विस्मय के साथ कहा—और किसको दे आता, माँ के हाथ में दे आया हूँ।

कुसुम—उन्होंने क्या कहा?

"कुछ नहीं।" कहकर कुञ्ज बाहर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे फेरी के लिए जाते समय कुब्ज ने आप ही कुसुम को बुलाकर कहा—तेरी सास का तो कुछ अजब हाल हो गया है कुसुम! इतनी क़ीमती चीज़ मिल गई, फिर भी वे कुछ ख़ुश न हुईं। मैंने जब उनके हाथ में दी तब उन्होंने एक शब्द तक नहीं कहा। बल्कि वृन्दावन को ही ग़नीमत कहना चाहिए। वह प्रसन्नता प्रकट करके कहने लगा—मजाल क्या है किसी की माँ, जो तुम्हारे कड़े पहन सके! मेरे बड़े भाग्य हैं माँ, इसी से भगवान् ने हमारी चीज़ हमें फिर देकर सावधान कर दिया।—क्यों, तेरा मुँह क्यों उतर गया?

कुसुम के गोरे मुख पर एकदम ज़र्दी छा गई। उसने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा—कुछ नहीं हुआ मुझे। हाँ, तो यह बात उन्होंने कही थी?

"हाँ, उसने तो इतना कहा भी, मगर माँ कुछ भी नहीं बोलीं। वे कहीं गई थीं। दिन भर बाद भूखी-प्यासी बैठी थीं। वे मेरी ओर इस तरह ताक रही थीं जैसे उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया कि मैंने क्या उन्हें दिया, और क्या उनसे कहा।" आप ही आप दो बार गरदन हिलाकर और सौदे का झव्वा सिर पर रखकर वह चल खड़ा हुआ।

तीन-चार दिन से कुब्ज बिगड़ा हुआ है। उसकी शिकायत है कि रसोई अच्छी नहीं बनती। कल और परसों इसी के लिए वह मुँह लटकाये रहा था। आज स्पष्ट ही

मुँह पर यह अभियोग सुनकर कुसुम भी लड़ पड़ी। भाई-बहन में अभी कलह हो चुका है।

कुञ्ज सामने परोसी हुई थाली छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला—आजकल तुझे क्या हो गया है कुसी, कभी दाल में बेहद नोन है, कभी भात गीला हो जाता है, कभी रोटी जल जाती है। तेरा मन कहाँ उचाट रहता है?

कुसुम के क्रोध की मात्रा भी बेहद बढ़ रही थी। उसने भी बिगड़कर जवाब दिया—मैं किसी की लौंड़ो-बाँदी नहीं हूँ—मुझसे रोटी नहीं बनेगी—जो अच्छी रसोई बना सके उसे ले आओ।

कुञ्ज का पेट भूख की आग से जल रहा था। इसी से नित्य के नियम में व्यतिक्रम हो गया। डर जाने के बदले उसने और भी बिगड़कर कहा—"पहले तू तो दूर हो; फिर देख लेना, ले आता हूँ कि नहीं।" यों कहता हुआ वह तेज़ी से चल खड़ा हुआ।

पहले दिन से ही जी भरकर रोने के लिए कुसुम का हृदय समय-समय पर व्याकुल हो उठता था। आज इतना बड़ा सुयोग मिल गया—वह जी भरकर ख़ूब रोई।

दादा के आगे परोसी थाली जहाँ की तहाँ पड़ी रही; बाहर का दरवाज़ा वैसे ही खुला पड़ा रहा। धोती का आँचल बिछाकर कुसुम रसोईघर की चौखट पर सिर रक्खे इस तरह रोने लगी, जैसे उसका कोई सगा मर गया हो।

उस समय दस बजे होंगे। कुसुम घण्टे भर के लगभग रो-धोकर, थककर, अभी सो गई थी। एकाएक आहट से चौंककर आँखें खोलते ही देख पड़ा, आँगन में खड़े होकर वृन्दावन कुञ्ज को पुकार रहा है। उसका हाथ पकड़े एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर बालक भी खड़ा है। उसकी अवस्था छः वर्ष के लगभग होगी। कुसुम ने हड़बड़ाकर घूँघट काढ़ लिया। फिर किवाड़े की आड़ में खड़े-खड़े, छेद से, एकटक—सब कुछ भूलकर—उसी सर्वाङ्गसुन्दर बालक को देखने लगी।

कुसुम ने देखते ही जान लिया था कि वह उसके स्वामी का बच्चा है। ताकते-ताकते सहसा उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं। उसके दोनों हाथ जैसे सहस्र-सहस्र होकर उस लड़के को छिना लेने के लिए अस्थिपञ्जर फोड़कर हृदय के बाहर निकल आने को तैयार होगये। तो भी उससे न तो यह हो सका कि वह वृन्दावन को कुछ उत्तर देती, और न यही हो सका कि सामने आकर बैठने के लिए कोई आसन बिछा देती। वह पत्थर की मूर्त्ति की तरह निर्निमेष नयनों से बालक को निहारती हुई खड़ी हो रही। किसी की आहट न मिलने से वृन्दावन कुछ विस्मित हुआ।

आज सबेरे अपने ही एक काम से वृन्दावन इधर आया था, और काम पूरा करके घर को लौटा जा रहा था। कुञ्ज के घर का दरवाज़ा बिलकुल खुला देखकर उसने समझा, कुञ्ज घर की

में है। इसी से गाड़ी ठहराकर भीतर चला आया। कुञ्ज से मिलने की उसे ख़ास ज़रूरत थी। बहेली में बैल नहे जाते देखकर वृन्दावन का लड़का चरन पहले ही से सवार हो बैठा था, इसी से वह भी साथ में था।

वृन्दावन ने फिर पुकारा—कोई घर में नहीं है क्या?

फिर भी कोई न बोला।

चरन ने इतने में कहा—बड़ी प्यास लगी है बापू, पानी पिऊँगा।

वृन्दावन ने खीझकर झिड़क कर कहा—नहीं, प्यास नहीं लगी है। रास्ते में नदिया में पी लेना।

बालक का मुँह सूख रहा था। वह बेचारा चुप हो रहा।

उस दिन लाचार होने पर कुसुम लज्जा का पहला हमला व्यर्थ करके वृन्दावन के सामने उपस्थित हुई थी, और उसने बिना हिचकिचाहट या सङ्कोच के प्रयोजन भर की बातचीत भी सहज ही कर ली थी। किन्तु आज और ही स्थिति होने के कारण उसके सब अङ्ग लज्जा के मारे बेक़ाबू हो रहे थे।

चरन अगर अपने प्यासे होने की बात मुँह से न निकालता तो शायद आज कुसुम किसी तरह वृन्दावन के आगे निकल न सकती। एक सेकिंड भर के लिए उसके मन में दुविधा उत्पन्न हुई। उसके बाद एक छोटा सा आसन लाकर उसने दालान में डाल दिया। फिर पास आकर चरन को गोद में उठाकर चुपचाप भीतर चली गई।

वृन्दावन इस इशारे को तो समझ गया किन्तु चरन क्या सोचकर, कुछ भी आपत्ति न करके, इस 'बिलकुल ही अपरिचित स्त्री की गोद में चढ़कर चला गया, यह उसकी समझ में न आया। पुत्र के स्वभाव को पिता अच्छी तरह जानता था।

इधर चरन मूढ़-सा हो गया था। एक तो अभी वह बाप की झिड़की सुन चुका था, उस पर इस अपरिचित नई जगह में एकाएक न जानें कहाँ से आकर न जाने कौन उसे उठाकर चल दिया। इस तरह चील्ह का-सा झप्पा मार कर कभी कोई उसे नहीं उठा ले गया था।

कुसुम ने चरन को घर के भीतर ले जाकर खाने को बतासे दिये, पानी पिलाया। फिर कुछ देर एकटक प्यार की नज़र से देखकर उसने सहसा प्रबल वेग से बालक को छाती से लगा लिया। दोनों हाथों से कसकर दबाते हुए वह झर-झर आँखों से आँसू बरसाने लगी।

चरन अपने को इस कठिन बाहुपाश से छुड़ाने की चेष्टा करने लगा। तब कुसुम ने आँसू पोंछते पोंछते कहा—छिः बेटा, मैं तुम्हारी माँ हूँ।

कुसुम सदा से बच्चों को बहुत चाहती थी। किसी बालक को किसी तरह कभी एक बार पाकर फिर वह छोड़ने नहीं आती थी। किन्तु जान पड़ता है, आज की जैसी इस तरह की विश्वग्रासी स्नेह की क्षुधा का तूफ़ान कभी उसके

हृदय में नहीं उठा। उसका हृदय जैसे स्नेह की आँधी से टूट-फूटकर गिरने लगा। यह मनोहर, सुस्थ, सबल, सुन्दर बालक उसी का हो सकता था; लेकिन क्यों नहीं हुआ? किसने उसमें बाधा डाल दी? जननी को सन्तान से वञ्चित करने का अधिकार संसार में किसको है? इतनी बड़ी अनधिकार की बात किसके द्वारा हुई? अपने हृदय पर चरन की उपस्थिति का अनुभव उसे जितना होता था उतना ही उसके वञ्चित, तृषित मातृहृदय में अशान्ति बढ़ती जाती थी—जैसे उसे और किसी पदार्थ से सान्त्वना नहीं मिल सकती थी; वह और किसी वस्तु के लाभ से सन्तुष्ट होना नहीं चाहती थी। उसे यही जान पड़ने लगा कि उसकी अपनी सम्पत्ति को ज़बरदस्ती करके अन्यायपूर्वक और लोगों ने छीन लिया है।

यह स्नेह का उपद्रव चरन के लिए असह्य हो उठा। यह जानता तो शायद वह नदी में ही जाकर पानी पीता। इस स्नेह के उपद्रव-अत्याचार की अपेक्षा प्यास का कष्ट सहना शायद सहज होता। उसने कहा—छोड़ दो।

कुसुम ने दोनों हाथों से बालक का मुँह सामने करके कहा—माँ कहो तो छोड़ दूँ।

चरन ने सिर हिलाकर माँ कहना अस्वीकार कर दिया।

उसके मुँह से "नहीं" सुनकर कुसुम ने कहा—"तो फिर मैं छोड़ूँगी भी नहीं।" अब उसने फिर उसे ज़ोर से छाती से चिमटा लिया। गाल दबाकर, चूमकर, कसकर छाती में

लगाकर, अनेक प्रकार से बालक को व्याकुल करके कुसुम ने कहा—माँ कहे बिना किसी तरह न छोड़ूँगी।

चरन रुआँसा हो आया। उसने हारकर कह दिया—माँ।

अब तो छोड़ना बिलकुल असम्भव हो गया। एक बार और उसे छाती से लगाकर कुसुम रोने लगी।

देर हो रही थी, इसी कारण बाहर से वृन्दावन ने कहा—तू अभी तक पानी नहीं पी चुका? क्यों रे चरन!

चरन ने रोकर कहा—छोड़ती ही नहीं हैं।

कुसुम ने आँसु पोंछकर रुँधे हुए कण्ठ से कहा—आज चरन को मेरे ही पास न रहने दो।

वृन्दावन ने द्वार के पास आकर कहा—वह रह कैसे सकेगा? इसके सिवा अभी उसने खाया-पिया भी नहीं है। माँ बहुत बेचैन होंगी।

कुसुम ने उसी तरह जवाब दिया—नहीं। वह आज यहीं रहेगा। आज मेरा मन बहुत ख़राब हो रहा है।

वृन्दावन—क्यों? मन क्यों ख़राब हो रहा है?

कुसुम ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

दम भर चुप रहकर कुसुम ने कहा—"गाड़ी लौटा दो। देर बहुत हो गई है। मैं नदी से चरन को नहलाये लाती हूँ।" इतना कहकर, किसी तरह के प्रतिवाद की राह न देख कर, कुसुम ने अँगोछा और तेल की प्याली उठा ली, चरन को गोद में ले लिया, और नदी में नहाने चल दी।

घर के पास ही नदी थी। पानी था तो थोड़ा, पर साफ़ और ठण्डा था। चरन देखकर प्रसन्न हो उठा। उसके गाँव में नदी नहीं, तालाब हैं; लेकिन वहाँ भी वह उतरकर नहाने नहीं पाता। इस तरह नदी में घुसकर मनमाना नहाने का सौभाग्य उसको पहले कभी प्राप्त न हुआ था। घाट पर जाकर चरन ने चुपचाप तेल लगाया और फिर जल में फाँद पड़ा। किनारे घुटने-घुटने भर जल था। कुछ देर तक ख़ूब उछल-कूदकर, ग़ोते लगाकर, पानी उछालकर नहाने के बाद जब वह कुसुम की गोद में चढ़कर लौट आया, उस समय माँ और बेटे में ख़ूब मेल-जोल हो गया था, मानो दोनों हमेशा के परिचित थे।

लड़के को गोद में लिये कुसुम वृन्दावन के सामने उपस्थित हुई। उस समय उसका मुँह बिलकुल खुला हुआ था, आवरण नाममात्र को न था। सिर पर सिर्फ़ आँचल का सिरा रक्खा हुआ था। जाते समय वह जी ख़राब होने की बात कह गई थी, किन्तु इस समय वृन्दावन को उसके चेहरे पर दुख-कष्ट की झलक तक न देख पड़ी। बल्कि ताजे खिले गुलाब के फूल जैसे दोनों होंठ दबी हुई हलकी हँसी के मारे खिले पड़ते थे। उसके आचरण में उस समय सङ्कोच या झिझक का भाव बिलकुल ही न था। उसने सहज भाव से कहा—अब तुम भी नहा लो।

वृन्दावन—उसके बाद ?

कुसुम—भोजन करना।

वृन्दावन—फिर ?

कुसुम—खाकर ज़रा आराम करना।

वृन्दावन—फिर ?

"जाओ, मैं नहीं जानती। यह अँगोछा लो, अब देर न करो।" कुसुम ने हँसकर स्वामी के ऊपर अँगोछा फेंक दिया।

वृन्दावन ने अँगोछा रोक लिया। मुँह फेरकर एक लम्बी साँस छोड़ी, जिसे कुसुम न देख सकी। फिर उसने कहा—तुम्हीं अब देर न करो। चरन को चाहे कुछ खिला-पिला दो। मुझे तो घर जाना ही होगा।

कुसुम—क्यों? जाना ही क्यों होगा? गाड़ी लौट जाने से माँ समझ जायँगी।

वृन्दावन—ठीक इसी कारण से तो गाड़ी लौटाई नहीं। थोड़ी दूर पर पेड़ के नीचे खड़ी कर रक्खी है।

यह सुनकर कुसुम का हँसता हुआ चेहरा मलिन हो गया। सूखे हुए मुँह से क्षण भर चुपचाप खड़े रहने के बाद सिर उठाकर उसने कहा—तो फिर मैं कहती हूँ कि माँ की अनुमति के विरुद्ध तुम्हारा यहाँ आना ही उचित नहीं हुआ।

कुसुम के रूठने के गूढ़ स्वर पर ध्यान देकर वृन्दावन हँस पड़ा। किन्तु वह हँसी आनन्द की न थी। फिर उसने सहज भाव से कहा—"देखो कुसुम, मैं इस ढङ्ग से इतना बड़ा हुआ हूँ कि माँ की इच्छा के विरुद्ध इस घर में क्यों, इस

गाँव में भी पैर रखना मेरे लिए हराम होता। ख़ैर, इस चर्चा को छोड़ो। जो झगड़ा ख़तम हो चुका है उसे फिर उठाने में किसी पक्ष को कुछ लाभ नहीं है—न तुमको, न मुझको। जाओ, देर न करो, चरन को जो खिलाना-पिलाना हो वह खिला-पिलाकर छुट्टी करो।" वृन्दावन फिर जाकर आसन पर बैठ गया।

उमड़े हुए आँसुओं को दबाकर कुसुम चुपचाप सिर झुकाये चरन को लेकर भीतर चली गई।

घण्टे भर के बाद पिता और पुत्र गाड़ी पर बैठकर जब अपने घर को चले तब राह में चरन ने पूछा—बापू, माँ इतना रोती क्यों थी?

वृन्दावन ने विस्मित होकर कहा—किसने तुझसे कहा कि वह तेरी माँ होती है?

चरन ने ज़ोर देकर कहा—वाह, मेरी माँ तो हैं ही। नहीं हैं?

वृन्दावन ने इस प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर फिर पूछा—अच्छा, तू अपनी माँ के पास यहाँ रह सकेगा?

चरन ने ख़ुश होकर सिर हिलाकर कहा—रह सकता हूँ बापू।

"अच्छा" कहकर वृन्दावन दूसरी ओर मुँह फेरकर गाड़ी के भीतर एक किनारे लेट रहा, और धूप से जल रहे आकाश की ओर चुपचाप ताकने लगा।

५५

दूसरे दिन तीसरे पहर कुसुम नदी से पानी भर लाने को दरवाज़े की कुञ्जी चढ़ा रही थी। इसी समय बाहर एक १२-१३ वर्ष की अवस्था का बालक इधर-उधर देखता हुआ जैसे किसी की तलाश कर रहा था। कुसुम को देखते ही पास आकर उसने पूछा—तुम कुञ्ज वैरागी का घर बता सकती हो?

कुसुम—हाँ, तुम कहाँ से आये हो ?

"बाड़ल गाँव से। पण्डितजी ने चिट्ठी भेजी है।" इतना कहकर उस बालक ने अपने मैले दुपट्टे के खूँट से खोल-कर एक चिट्ठी दिखलाई।

कुसुम की नसों का ख़ून गरम हो उठा। उसने देखा तो ऊपर उसी का नाम लिखा था। खोल कर देखा, नीचे वृन्दावन के दस्तख़त थे।

चिट्ठी में क्या लिखा है, यह जानने के लिए उन्मत्त आग्रह को प्राणपण से दबाकर वह लड़के को भीतर बुला ले गई। पूछा—तुम पण्डितजी किसे कहते हो ? यह चिट्ठी तुम्हें किसने दी है ?

लड़के ने आश्चर्य के स्वर में कहा—कहा तो, पण्डितजी ने दी है।

कुसुम को वृन्दावन की पूर्वोक्त पाठशाला का कुछ हाल नहीं मालूम था। इसी से फिर यह पण्डितजी का रहस्य वह न समझ सकी। उसने दुबारा पूछा—तुम चरन के बाप को पहचानते हो ?

बालक—पहचानता क्यों नहीं—वही तो हमारे पण्डितजी हैं!

कुसुम—उन्हीं से तुम पढ़ते हो?

बालक—मैं भी पढ़ता हूँ। पाठशाला में और भी बहुत से लड़के उनसे पढ़ते हैं।

कुसुम ने उत्सुक होकर प्रश्न पर प्रश्न करके इस सम्बन्ध में बालक से सारा हाल जान लिया। पाठशाला घर के दरवाज़े पर ही है; फ़ीस कुछ नहीं देनी पड़ती; पण्डितजी ही अपने पास से ग़रीब लड़कों को स्लेट, किताब, पेंसिल, वग़ैरह भी ख़रीद देते हैं; जो ग़रीब लड़के दिन को मेहनत-मजूरी से फ़ुरसत नहीं पाते वे रात को पढ़ने आते हैं; ठाकुरजी की आरती हो जाने के बाद प्रसाद खाकर शोर-गुल करते हुए अपने घर लौट जाते हैं; दो सयाने लड़के अँगरेज़ी भी पढ़ते हैं। इस तरह के सभी समाचार पूछ लेने के बाद उस लड़के को बतासे और लैया देकर कुसुम ने बिदा किया। अब वह चिट्ठी खोल कर पढ़ने बैठी।

कुसुम जिस सुख का सपना देख रही थी उसे जैसे किसी ने अचानक ज़ोर के धक्के से नष्ट कर डाला। पत्र उसी के नाम लिखा गया है अवश्य, लेकिन न शुरू में कोई—प्रिय अथवा अप्रिय—सम्भाषण है, न कोई स्नेह-सूचक बात है। यहाँ तक कि आशीर्वाद भी नदारत! यह उसके नाम स्वामी के हाथ का लिखा प्रथम पत्र है! इसके पहले आज तक किसी मनुष्य ने

उसके नाम कोई पत्र नहीं लिखा, यह सच है किन्तु उसने अपनी अनेक सखियों को निजी चिट्ठियाँ, उनके पतियों की भेजी हुई, देखी हैं। उनमें और इस पत्र में कैसा कठोर अन्तर है! इसमें आदि से अन्त तक सब बातें काम-काज की ही लिखी हैं। कुञ्जनाथ के विवाह का ब्योरा लिखा है। यही कहने के लिए वे कल आये थे। वृन्दावन ने लिखा है, माँ ने यह ब्याह ठीक किया है। वही सारा ख़र्च करेंगी। हर तरह से यह विवाह करने योग्य है। क्योंकि इसके होने से कुञ्जनाथ का, साथ ही कुसुम का भी, दारिद्र्य और दुःख-दैन्य दूर हो जायगा। यह इशारा एक प्रकार से स्पष्ट ही है।

एक बार पढ़ करके कुसुम ने दुबारा फिर पढ़ने की कोशिश की। लेकिन अब की सारे अक्षर उसकी आँखों के आगे जैसे नाचने लगे। चिट्ठी लपेटकर वह किसी तरह वहाँ से अपनी कोठरी में आकर लेट रही। अपने इतने बड़े सौभाग्य की सम्भावना भी उसके हृदय में किञ्चिन्मात्र आनन्द न उत्पन्न कर सकी।

६

कुञ्जनाथ का ब्याह हुए एक महीना हुआ होगा। वृन्दावन उसी दिन से फिर कभी कुञ्ज के घर नहीं आया। जिस दिन कुञ्ज का ब्याह था उस दिन भी ज्वर होने की बात कहकर वह अनुपस्थित ही रहा। उसकी माँ सिर्फ़ चरन को लेकर एक दिन के लिए आई थीं। दूसरे दिन नहीं ठहरीं। क्योंकि,

गृह-देवता की सेवा-पूजा उन्हीं को करनी पड़ती है। इसी लिए वे कहीं बाहर टिक नहीं सकतीं। हाँ, अकेला चरन पाँच छः दिन तक अवश्य रहा था। मन के माफ़िक़ नई माँ पाकर हो, या नदी में नहाने के लोभ से हो, उसने घर जाने का नाम नहीं लिया। पाँच-छः दिन बाद ज़बरदस्ती ले जाने पर गया। तब से कुसुम को जीवन दूभर हो गया है।

इस व्याह के पहले कुसुम के मन में जो-जो आशङ्काएँ उठी थीं उन सबके अक्षरशः सत्य होने के आसार नज़र आ रहे थे। अपने दादा को वह अच्छी तरह पहचानती थी। उसने ठीक ही सोचा था कि वह सास की सलाह मान, यह ग़रीबी का घर छोड़कर, घरजमाई के रूप में ससुराल ही में रहने को तैयार हो जायगा। हुआ भी वही। जिस सिर पर मौर रखकर कुञ्ज व्याह करने गया था, उस पर फिर सौदे का झब्बा रखना उसने पसन्द नहीं किया। नलडाँगा (ससुराल) के लोग सुनकर क्या कहेंगे? व्याह के अवसर पर वृन्दावन की माँ ने किसी वहाने कुछ नग़दी दी थी। उसी से कुछ माल ख़रीदकर वाहर, सड़क के किनारे, एक छप्पर डलवाकर उसके नीचे विसातखाने की एक दुकान उसने रख ली। उसमें एक पैसे की भी बिक्री नहीं हुई। तथापि एक महीने के भीतर ही वह नया कुर्ता-नई धोती पहनकर, बढ़िया जूता डाँटकर, तीन-चार बार ससुराल हो आया। पहले वह वहन से बहुत डरता था, लेकिन अब नहीं डरता। दाल-

चावल न होने की सूचना पाकर चुपचाप जाकर दुकान में बैठ रहता है, अथवा कहीं खिसक जाता है; दिन में फिर उसके दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। चारों ओर नज़र दौड़ाकर देखने पर कुसुम को निराशा ही नज़र आई। उसने जो कुछ थोड़े से रुपये जमा कर रक्खे थे वही अब तक ख़र्च होते रहे। अब वह पूँजी भी समाप्त होने को थी, फिर भी कुञ्ज को कुछ फ़िक्र न थी। वह नई दुकान में बैठकर दिन भर तमाखू पीता और ऊँघता है। लोगों के जमा होने पर ससुराल का बखान करता है, या नई जायदाद और ज़मींदारी का चिट्ठा बनाया करता है।

उस दिन सबेरे उठकर कुञ्ज नये वार्निश के पंप-जूते में तेल लगाकर उसे चमका रहा था। कुसुम ने रसोईघर से निकलकर घड़ी भर यह तमाशा देखने के बाद कहा—तो क्या आज फिर नलडाँगा जाने की तैयारी कर रहे हो?

केवल "हूँ" कहकर कुञ्ज उसी तरह अपना काम करता रहा।

दम भर बाद कोमल स्वर में कुसुम ने कहा—अभी उस दिन तो वहाँ हो आये हो दादा। आज ज़रा जाकर मेरे चरन को देख आओ। बहुत दिन हुए, लड़के की ख़बर नहीं मिली। मन बहुत ख़राब हो रहा है।

कुञ्ज ने बिगड़कर कहा—तेरा मन तो यों ही ख़राब हुआ करता है। चरन मज़े में है।

कुसुम को क्रोध चढ़ आया, मगर उसे दबाकर उसने कहा—मजे़ में है तो क्या हुआ, ज़रा जाकर देख-सुन आओ; ससुराल कल चले जाना।

अब की कुञ्ज गरम हो उठा। बोला—कल कैसे चला जाऊँगा? वहाँ कोई मर्द नहीं है। घर-बार, ज़मीन-जायदाद का क्या हाल है, क्या हो रहा है—क्या नहीं हो रहा है—सब देखने-सुननेवाला मैं ही तो हूँ। तू ही बता, मैं अकेला आदमी क्या क्या सँभालूँ, किसे-किसे देखूँ?

भाई के कहने के ढङ्ग को देखकर क्रोध में भी कुसुम हँस दी। हँसते-हँसते कहा—सब सँभाल लोगे दादा। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, आज ज़रा चले जाओ। क्या जानें क्यों, सच-मुच उसके लिए जी घबरा रहा है।

कुञ्ज ने जूते का जोड़ा अलग फेंककर बहुत ही रूखे स्वर में कहा—मैं नहीं जा सकता। वृन्दावन मेरे ब्याह में क्यों नहीं आया? वह क्या मुझसे ऐसा बड़ा दौलतवाला है कि उस दिन ज़रा आया न गया उससे?

कुञ्ज की बातें कुसुम के लिए उत्तरोत्तर असह्य होती जा रही थीं। फिर भी उसने शान्त स्वर में कहा—उन्हें उस दिन बुख़ार चढ़ आया था।

कुञ्ज—कभी नहीं। नलडाँगा में बैठे ही बैठे माँ ने सुन-कर कह दिया था कि बुख़ार का बहाना झूठ है। माँ को धोखा देना सहज काम नहीं है कुसुम। वे घर में बैठे-बैठे

दुनिया भर का हाल बता देती हैं, यह जानती हो? निमक-हरामी और किसे कहते हैं, इसी को कहते हैं। मैं उसका मुँह देखने का भी रवादार नहीं!

इस तरह कह कर कुञ्ज उठ खड़ा हुआ। जूता पहना कुसुम इस तरह सन्नाटे में आ गई जैसे उस पर वज्र गिर पड़ा हो। कुछ देर तक चुप रहकर उसने धीरे-धीरे कहा—वे निमकहराम हैं! ठीक है, निमक तो उसी दिन तुमने बहुत अधिक खिलाया था जिस दिन उनको घर में बुलाकर तुम चुपचाप भाग गये थे। दादा, मैं तो सपने में भी यह न सोच सकती थी कि तुम व्याह होते ही इस तरह बदल जाओगे!

कुञ्ज के पास इस अभियोग का कुछ उत्तर न था। इसी से, जैसे सुना ही नहीं ऐसे, दूसरी ओर मुँह किये वह खड़ा रहा। कुछ बोला नहीं।

कुसुम ने फिर कहा—जिसे तुम अपनी ज़मीन-जायदाद कह रहे हो वह किसके ज़रिए मिली है तुमको? किसने तुम्हारा व्याह कराया है?

कुञ्ज ने अब की घूमकर उत्तर दिया—व्याह कौन किसका करा देता है? माँ कहती थीं, जिसका फूल जब फूलता है,❀

❀ लड़कियों के व्याह के सम्बन्ध में बङ्गाल की यह एक कहने की शैली है। इसका अर्थ यह है कि जब किसी के नसीब के अनुसार व्याह का समय आजाता है तब उसका व्याह हो ही जाता है।

तब उसका व्याह कोई नहीं रोक सकता। व्याह अपने आप हो जाता है।

कुसुम--अपने आप हो जाता है ?

कुञ्ज--होता ही है।

कुसुम फिर कुछ न कहकर धीरे-धीरे भीतर चली गई। लज्जा और घृणा के भार से उसका हृदय जैसे फटा जा रहा था। छी-छी! ये बातें जो कहीं वे लोग सुन पावें तो क्या कहेंगे! सुनते ही उनके मन में यह धारणा हो जायगी कि भाई और बहन दोनों एक ही साँचे के ढले हैं!

पन्द्रह-बीस मिनट के बाद नये जूतों की चरमराहट सुन कर बाहर आकर कुसुम ने पूछा--कब लौटोगे ?

कुञ्ज--कल सवेरे तक।

कुसुम--अच्छा, मुझे अकेले यहाँ छोड़ जाने में तुम्हें डर नहीं लगता, शर्म नहीं आती ?

"क्यों, यहाँ गाँव में क्या बाघ-भालू लगते हैं, जो तुझे खा जायँगे? मैं सवेरे ही तो लौट आऊँगा।" यों कहता हुआ कुञ्ज ससुराल चल दिया। कुसुम ने भीतर जाकर जलते हुए चूल्हे में पानी डाल दिया, और आप बिछौने पर पड़ रही।

७

कोई कुकर्म करनेवाला आदमी जैसे पश्चात्ताप होने पर, निरुपाय होने की दशा में, अपने अपराध को स्वीकार करता है ठीक उसी का-सा चेहरा लिये वृन्दावन अपनी माँ के पास

आकर बोला—मुझे माफ़ करो माँ। आज्ञा दो मुझे, मैं खोज-खाज कर तुम्हारे लिए एक दासी ला दूँ। मैं अब यह न होने दूँगा कि तुम इसी तरह हमेशा गिरिस्ती का बोझ अपने सिर पर लादकर मरती-खपती रहो।

वृन्दावन की माँ ठाकुरद्वारे की दालान में पूजा का सामान कर रही थीं। सिर उठाकर बोलीं—क्या करेगा ?

वृन्दा०—तुम्हारे लिए दासी लाऊँगा; जो चरन की देख-रेख रक्खेगी, तुम्हारी सेवा करेगी और ज़रूरत होने पर ठाकुरजी की पूजा-सेवा का काम भी देखेगी—हुकुम दोगी न माँ ?

प्रश्न करके वृन्दावन उत्सुक-व्यथित दृष्टि से माँ के मुँह की ओर ताकने लगा।

अब माँ की समझ में बात आई। क्योंकि स्वजाति के सिवा अन्य साधारण दासी इस ठाकुरजी की दालान में पैर न रख सकती थी। दम भर चुप रहकर माँ ने पूछा—यह क्या तू सच कह रहा है वृन्दावन ?

वृन्दा०—सच नहीं तो क्या झूठ बोलूँगा माँ! लड़कपन में मैंने कभी झूठ बोला हो तो तुम जानो, होश सँभालने पर आज तक कभी तुम्हारे सामने मैं झूठ बोला नहीं।

"अच्छा, सोच लूँ।" कहकर ज़रा मुसकिराकर वे फिर अपना काम करने लगीं।

वृन्दावन सामने आकर बैठ गया। बोला—यह न होगा। मैं तुम्हें सोचने-विचारने के लिए समय न दूँगा। चाहे जो

हो, कुछ आज्ञा लेकर ही यहाँ से जाऊँगा। यही प्रतिज्ञा करके आया हूँ—आज्ञा लेकर ही जाऊँगा।

माँ—सोचने के लिए समय क्यों न देगा?

वृन्दा०—इसका कारण है। तुम सोच-विचारकर जो कहोगी वह तुम्हारी बात अवश्य होगी, लेकिन मेरी माँ का हुकुम न होगा। मैं भली-बुरी सलाह नहीं माँगता; केवल तुम्हारी अनुमति माँगता हूँ।

माँ ने सिर उठाकर, क्षण भर पुत्र के मुख की ओर ताक कर, कहा—मगर एक दिन मैंने जब अनुमति दी थी, आग्रह और अनुरोध किया था, तब तो तूने मेरी बात सुनी ही नहीं वृन्दावन!

"मुझे सब याद है। उसी पाप का परिणाम आज चारों ओर से घेरकर—" इतना कहकर ही वृन्दावन ने सिर नवा लिया।

माँ ने समझ लिया कि उसने इस समय केवल उन्हीं को सुखी करने के लिए यह प्रस्ताव किया है, और इसके अनुसार काम करना उसे बहुत कष्टदायक होगा। माँ की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने संक्षेप में कहा—इस समय इस चर्चा को रहने दे वृन्दावन, दो दिन बाद मैं बतलाऊँगी।

वृन्दावन ने हठ करके कहा—माँ, तुम जिस कारण से टाल-मटोल कर रही हो वह दो दिन बाद भी नहीं होने का। जिसने तुम्हारा अपमान किया है उसे, तुम्हारा जी चाहे तो,

तुम क्षमा कर दो; किन्तु मैं नहीं करूँगा। अब और सहा नहीं जाता। माँ, मुझे अनुमति दे दो, मैं ज़रा शान्ति पाऊँ।

माँ ने फिर सिर उठाकर देखा। दम भर सोचकर, एक लम्बी साँस छोड़कर, कहा—अच्छा, अनुमति देती हूँ।

इस निःश्वास का मतलब वृन्दावन समझ गया; लेकिन उसने भी फिर कुछ और नहीं कहा। केवल चुपचाप माता के पैरों पर सिर रखकर, उनकी चरण-रज माथे में लगाकर, बाहर चला गया।

इसी समय "पण्डितजी, लीजिए, यह आपकी चिट्ठी है" कहते हुए पाठशाला के एक विद्यार्थी ने आकर उसके हाथ में एक चिट्ठी दे दी।

भीतर से माँ ने पूछा—किसकी चिट्ठी है रे वृन्दावन?

"मालूम नहीं, देखता हूँ" कहकर वृन्दावन अन्यमनस्क भाव से अपनी बैठक में चला गया। पत्र खोलकर देखा, स्त्री के हाथ की लिखावट है, मगर अक्षर ख़ूब स्पष्ट हैं—काटा-कूटी नहीं है, वर्णाशुद्धि नहीं है। ऊपर सिरनामे में केवल "श्रीचरणकमलेषु" लिखकर चिट्ठी शुरू की गई है। मगर नीचे किसी का नाम या हस्ताक्षर नहीं है। उसने पहले कभी कुसुम के हाथ की लिखावट नहीं देखी थी, फिर भी वह फ़ौरन् समझ गया कि यह उसी का पत्र है।

पत्र में लिखा है—दादा को देखो, तो अब तुम पहचान न पाओगे। यह क्यों? इसका उत्तर जो कुछ है वह और

किसी से किसी तरह कहने लायक़ नहीं है। यहाँ तक कि तुम से भी कहने में लज्जा के मारे मेरा सिर नीचा हुआ जा रहा है। भैया साहब आज फिर ससुराल गये हैं। शायद कल लौटेंगे। न लौटना भी सम्भव है। क्योंकि वे कह गये हैं, यहाँ गाँव में कुछ बाघ या भालू नहीं रहते हैं। मुझे अकेली पाकर कोई खा जायगा, यह आशङ्का उनके मन में नहीं है। तुम में अगर इतना साहस न हो, तो सिर्फ़ मेरे चरन को ही पहुँचा जाओ।

पीछे कहा जा चुका है कि प्रातःकाल भाई के ऊपर खीझ कर कुसुम ने चूल्हे में पानी डाल दिया था। फिर उसने चूल्हा जलाया ही नहीं उस दिन। दिन भर भूखी पड़ी रही। भय और दुर्भावना के मारे व्याकुल हो रही कुसुम हज़ार दफ़े भीतर से बाहर गई और बाहर से भीतर आई। इसी में दिन बीत गया। सन्ध्या हुई। रात हो गई। अब उसे ससुराल से किसी के आने की आशा नहीं रही। सुन-सान सन्नाटे के घर में रात भर अकेले रहने की कल्पना करने से बारम्बार उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। इसी समय बाहर चरन के सुतीक्ष्ण कण्ठ से 'माँ' की पुकार सुनते ही उसके मुर्दा शरीर में जैसे जान आ गई—अथाह जल में डूब रहे आदमी का जैसे अकस्मात् तले की तह पर पैर पहुँच गया।

वह दौड़कर बाहर आई; चरन को गोद में उठा लिया; उसका मुँह अपने मुँह पर रखकर उसके मधुर-मनोहर-मोहक

स्पर्श के द्वारा जैसे वह जी भरकर इस बात का अनुभव करने लगी कि वह अब अकेली नहीं है।

चरन नौकर के साथ आया था। रात को खा-पीकर छुट्टी मिलने पर उसने नौकर के रहने के लिए कुञ्ज की नई दुकान में जगह कर दी। कुसुम घर में बिछौने पर लेटकर, लड़के को छाती से लगाकर, तरह-तरह के प्रश्न करने लगी। अन्त को उसने धीमी आवाज़ में पूछा—हाँ रे चरन, तेरे बापू क्या करते हैं?

चरन एकदम हड़बड़ाकर उठ बैठा, और जाकर अपने कुर्ते की जेब से एक छोटी सी पोटली निकाल लाया। कुसुम के हाथ में वह पोटली देकर लड़के ने कहा—मैं भूल गया था माँ, बप्पा ने यह तुमको दी है।

हाथ में लेते ही कुसुम ने समझ लिया कि उसमें रुपये हैं।

चरन ने कहा—यह देकर बापू लौट गये।

कुसुम ने व्यग्र होकर पूछा—कहाँ से लौट गये रे?

चरन ने हाथ उठाकर इशारे से बताया—यहाँ, वहाँ, उस जगह से।

कुसुम—यहाँ तक आये थे क्या वे?

चरन ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, आये तो थे।

कुसुम ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। उसे बड़ा बुरा लगा। इस उपेक्षा से रूठकर वह चुपचाप पड़ी रही। वही उस दिन वे (वृन्दावन) आये थे, और वैसे ही दोपहर की

कड़ी धूप में बूँद भर पानी तक पिये बिना, चरन को लेकर, लौट गये थे। उस (कुसुम) ने भी क्रोध के मारे दुबारा अनुरोध नहीं किया, वल्कि कुछ कड़ी-कड़ी बातें सुना दी थीं। उसके उपरान्त फिर किसी दिन उनकी सूरत नहीं दिखाई दी। पहले तो इस राह से आने-जाने के लिए न जाने कितने काम निकल आते थे, अब शायद इधर कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया। उनका प्रयोजन भले ही न रहे, किन्तु अन्तर्यामी ही जानते हैं कि वह एक-एक दिन, सबेरे से शाम तक सारा समय, किस तरह बिताती है। राह में भी बैलगाड़ी की आहट पाकर, घरघराहट सुनकर, उसकी नसों में ख़ून किस तेज़ी से नाच उठता है। वह किस आशा से दरवाज़े की आड़ में जाकर खड़ी होती और आने-जानेवाली बैलगाड़ी की ओर एकटक ताका करती है, इसे वह या भगवान् ही जानते हैं। दादा के ब्याहवाली रात को भी नहीं आये। आज यहाँ तक आकर भी दरवाज़े के बाहर ही से चुपके से चले गये।

कुसुम को उस दिन की बात स्मरण हो आई, जिस दिन उसका दादा कड़े लौटा आया था, और उसने लौटकर बतलाया था कि उन्होंने माँ से कहा—भगवान् ने हमारी चीज़ हमें लौटाकर सावधान कर दिया है।

अच्छा, यदि सचमुच उनके मन का भाव यही हो गया हो! अचरज ही क्या है? उसने अपनी ओर से आघात पहुँचाने में तो कुछ कसर रख नहीं छोड़ी। बार-बार विमुख

किया—तिरस्कार भी उसे कहें तो कुछ झूठ नहीं। उस पर उनकी माँ का भी अपमान कर डाला। क्षण भर तो किसी तरह उसकी समझ ही में यह बात न आई कि उस दिन उसकी ऐसी कुबुद्धि क्यों हुई थी। जिस सम्बन्ध को वह चिरकाल से प्राणपण से अस्वीकार करती आई है, इस समय उसी के विरुद्ध उसका सारा शरीर और मन विद्रोही हो उठा। वह बहुत ही क्रोध के वेग से क्षुब्ध होकर आपही अपने अन्तः-करण से यों तर्क करने लगी—"क्यों, यह क्या मेरे अपने हाथ का गढ़ा हुआ सम्बन्ध है, जो मेरे 'नहीं, नहीं' करने से ही असिद्ध हो जायगा? फिर अगर ऐसा ही हो जाय, सच-मुच यदि वे मेरे पति नहीं हैं, तो भी मैं यह पूछती हूँ कि आज मेरे हृदय की सम्पूर्ण भक्ति, मेरे अन्तर की समस्त कामना क्यों इस तरह अनन्य भाव से एकाग्र होकर उन्हीं को अपना लक्ष्य या आश्रय बनाये हुए है? केवल एक दिन की दो-चार घर-गिरस्ती की तुच्छ बातें करने में, केवल एक बेला अतीव साधारण थोड़ी ही सेवा-टहल करने में, इतना प्रेम कहाँ से उनपर हो आया?" कुसुम दृढ़ता के साथ बार-बार यह कहने लगी—झूठ है, बिलकुल झूठ है! मेरे कलङ्क की कहानी कोरी कल्पना है! वह किसी तरह सच हो ही नहीं सकती। मेरी आत्मा कहती है, मेरा हृदय हामी भरता है। मैं क़सम खाकर कह सकती हूँ कि वही मेरे पति हैं, और मैं निष्कलङ्क हूँ। मालूम होता है मेरी माँ, अपने अपमान की आग

की ज्वाला से आगा-पीछा सोचे बिना, बदला लेने के फेर में अन्धी सी होकर, यह असत्य अथच अमिट कलङ्क-कालिमा मेरे चरित्र की चादर में लगा गई है।

क्षण भर थमकर फिर वह मन में कहने लगी—माँ तो मर गई। अब सच-झूठ का पता लगाना असम्भव है, उसका कोई उपाय ही नहीं रहा। ख़ैर, मैं कुछ भी क्यों न कहा करूँ, वे तो ख़ुद ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ। फिर क्यों वे मेरी यह अनुचित ढिठाई, असङ्गत अस्वीकृति शिरोधार्य किये बैठे हैं? क्यों नहीं बलपूर्वक अपने अधिकार का उपयोग करते? क्यों नहीं अपनी चीज़ अपने क़ब्ज़े में कर लेते? क्यों नहीं मेरे सम्पूर्ण दर्प को पैरों से दल-मलकर, बलपूर्वक हाथ पकड़कर, खींचकर मुझे वहाँ ले जाते जहाँ उनका जी चाहे? उन्हें कौन रोकनेवाला है? मेरा अस्वीकार करना, प्रतिवाद करना अन्याय है, और उसे मान लेना उनके लिए अनुचित है।

अकस्मात् कुसुम का सारा शरीर काँप उठने से चरन की नींद उचट गई, क्योंकि वह उसकी छाती से चिमटा सो रहा था। चरन ने पूछा—क्या है माँ?

कुसुम ने उसे और अधिक चिमटाते हुए चुपके-चुपके पूछा—अच्छा, बता तो सही चरन, तू किसे अधिक प्यार करता है—अपने बप्पा को, या मुझे?

चरन ने फ़ौरन् जवाब दिया—तुमको।

गद्गद स्वर में फिर कुसुम ने पूछा—अच्छा, बड़ा होकर क्या तू अपनी माँ को खाने को देगा चरन ?

चरन—हाँ दूँगा।

कुसुम—तेरा बप्पा जब मुझे निकाल देगा तब तू मुझे अपने पास रहने देगा ?

चरन—ज़रूर।

किस अवस्था में क्या देना होगा, यह तो वह बच्चा समझ न सकता था; किन्तु उसका ख़ूब समझा हुआ था कि किसी अवस्था में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं हो सकती जिसे वह अपनी नई माँ को न दे सके।

कुसुम की आँखों से बूँद-बूँद करके बड़े-बड़े आनन्द के आँसू टपक रहे थे। चरन के सो जाने पर आँखें पोंछकर उसकी ओर एकटक ताकती हुई कुसुम कहने लगी—डर क्या है मुझे! मेरे लड़का तो है। और कोई अगर आश्रय नहीं देगा तो वह अवश्य ही देगा!

दूसरे दिन सूर्योदय हो चुकने के उपरान्त थोड़ी देर में माँ और बेटा, दोनों ने नदी से नहाकर घर में घुसते ही देखा, एक अधेड़ औरत आँगन के बीच खड़ी हुई तरह-तरह के सवाल कर रही है, और कुञ्जनाथ विनीत भाव से यथायोग्य जवाब देता जाता है। यह औरत कुञ्ज की सास साहिबा थीं। केवल कौतूहल के कारण ही उन्होंने कुछ कुञ्ज की कुटिया को कृपाकटाक्ष का लक्ष्य नहीं बनाया था, वह तो

अपनी आँख से देखकर यह निश्चय करने के लिए पधारी थीं कि असाधारण रमणी-रत्न होने का सम्मान पानेवाली उनकी परमप्यारी दुलारी सुकुमारी इकलौती कन्या के रहने लायक़ मकान और उसका सामान है या नहीं। क्योंकि कदाचित् कभी कुछ दिन के लिए उसे भेजना ही पड़े।

अचानक कुसुम को आते देखकर सासजी सन्नाटे में आ गई, और टकटकी बाँधकर उसका मुँह ताकने लगीं। कुसुम भीगे कपड़े में अपने अपरूप रूप और यौवन की शोभा को सँभाल न पाती थी। कुन्दन की सी कान्ति गीले कपड़े से फूटी पड़ती थी--गीले, खुले हुए बालों के गुच्छे सारी पीठ को ढककर जाँघों तक लटक रहे थे। बाईं ओर भरा घड़ा कमर पर रक्खे, दाहने हाथ से चरन का बायाँ हाथ पकड़े चली आ रही कुसुम की इस समय की मातृमूर्ति महिमामयी थी। चरन के हाथ में भी पानी-भरा एक लोटा था। संसार में ऐसी माता की मूर्ति सर्वदा सर्वत्र नहीं देख पड़ती। जब कभी देखने का सौभाग्य होता है तब फिर विस्मित होकर देखना ही पड़ता है। कुञ्जनाथ भी मुँह फैलाये उसी की ओर ताक रहा था। यह देखकर कुसुम लज्जित हो उठी। वह जल्दी से भीतर जाने का उपक्रम कर ही रही थी कि कुञ्ज की सास कह उठी—यही न है कुसुम?

कुञ्ज ने ख़ुश होकर कहा—हाँ माँ, यही मेरी बहन है।

सारा आँगन गोबर डालकर लीपा जा चुका था, इसलिए कुसुम ने वहीं घड़ा रखकर कुञ्ज की सास को प्रणाम किया। माँ की देखादेखी चरन ने भी प्रणाम किया।

सास ने पूछा—इस लड़के को तो कहीं जैसे देखा है।

लड़का तुरन्त अपना परिचय दे चला। बोला—मैं चरन हूँ। दादी के साथ आपके यहाँ मामाजी की बहू देखने गया था।

कुसुम ने स्नेह की हँसी हँसकर चरन को गोद में खींच कर कहा—छि: बेटा, यह कोई कहता है! मामी को देखने गया था, कहो।

कुञ्ज की सास बोल उठीं—शायद विन्दा बैरागी का लड़का है? रत्ती भर के छोकरे की बातें तो सुनो।" विकट विस्मय के मारे कुसुम के चेहरे का रङ्ग फीका पड़ गया। हँसी से उज्ज्वल हो रहे मुख पर अँधेरी छा गई। उसने एक दृष्टि अपने भाई के चेहरे पर डाली, और फिर एक बार इस निपट निरक्षर, अप्रियवादिनी और अभिमान-भरी स्त्री के मुख की ओर देखा; इसके बाद वह घड़ा उठाकर, लड़के का हाथ पकड़कर, रसोईघर के भीतर घुस गई। अकस्मात् यह क्या से क्या हो गया!

कुञ्ज कितना ही बड़ा बेवकूफ़ क्यों न हो, सास के ये रूखे और कठोर वचन उसके कानों में भी खटके। अपनी बहन के स्वभाव को वह अच्छी तरह जानता था। उसके

चेहरे को देखकर, उसके मन का भाव समझकर, वह बहुत घबरा उठा।

कुञ्ज ने समझ लिया कि कुसुम अब उसकी सास को किसी तरह अच्छी दृष्टि से न देख सकेगी। अबकी तो वह टाल गई, मगर फिर कोई ऐसी बात जो होगी तो वह अवश्य लड़-झगड़ पड़ेगी। उधर बहन, इधर सास! कुञ्ज बड़े असमञ्जस में पड़ गया। कुञ्ज की सास भी मन ही मन अपने व्यवहार पर लज्जित हो रही थी। ठीक इसी ढङ्ग से यही बात कहना उसे भी अभीष्ट न था। केवल शिक्षा और अभ्यास के दोष से यह बात ऐसे बुरे ढङ्ग से उसके मुँह से निकल गई थी।

रसोईघर के भीतर खड़े होकर आड़ से कुसुम ने गोकुल वैरागी की विधवा (कुञ्ज की सास) को अच्छी तरह सिर से पैर तक देखा। उमर अभी पूरी चालीस साल की नहीं हुई होगी। वह बे-किनारी की सफ़ेद धोती पहने थो। लेकिन गले में सोने का हार, कानों में बालियाँ, हाथों में अनन्त और बाजूबन्द वग़ैरह गहनों की भरमार देख पड़ी। कुसुम ने अपनी सास के पहनावे से इस विधवा के पहनावे की तुलना की तो उसे इस पर घृणा होने लगी।

कुञ्ज के साथ उसकी बातें हो रही थीं। क्या बात-चीत होती थी, यह सुन न पाने पर भी कुसुम इतना ख़ूब समझ रही थी कि वे बातें उसी से सम्बन्ध रखती हैं।

सासजी पान और ज़र्दा ज़रा अधिक मात्रा में खाती हैं। सबेरे से शुरू करके दिन भर, घड़ी-घड़ी भर के बाद, पान-सुरती का सेवन चलता रहा। दम भर उनका मुँह ख़ाली नहीं रहने पाता था। अस्तु, नहा-धो चुकने के बाद उन्होंने पूजा-पाठ की अपेक्षा तिलक-सेवा में ही अधिक समय लगाया। तिलक-सेवा का सब ज़रूरी सामान वे अपने साथ लेती आई थीं। छोटा शीशा तक लाना न भूली थीं।

कुसुम नित्य की पूजा और जप समाप्त करके रसोई बनाने बैठी। सासजी उसके पास आकर उपस्थित हुईं। बैठने के उपरान्त उन्होंने इधर-उधर ताककर ज़रा हँसकर कहा—क्योंजी, तुम्हारे गले में कण्ठी-माला नहीं देख पड़ती? यह क्यों? तुमने तिलक-सेवा भी नहीं की। तुम कैसी वैष्णव की बेटी हो?

कुसुम ने संक्षेप में उत्तर दिया—मैं यह कुछ नहीं करती।

सास—नहीं करती कह देने से ही छुट्टी नहीं मिल जायगी। यह कुछ न करने से लोग तुम्हारे हाथ का पानी तक न पियेंगे!—

भाई की सास की ओर मुँह फेर कर कुसुम ने कहा—तो आपके लिए अलग खाने-पकाने का सामान कर दूँ?

सास—मैं तो अपने आदमियों में हूँ; न होगा, तुम्हारे हाथ का खा-पी लूँगी। लेकिन ग़ैर आदमी तो खाने-पीने से इनकार करेंगे।

कुसुम ने कुछ जवाब नहीं दिया।

कुञ्ज ने आकर पूछा—चरन कब आया कुसुम ?

कुसुम—कल सन्ध्या को।

कुञ्ज की सास बीच ही में बोल उठी—उधर यह भी सुनती हूँ कि बिन्दा वैष्णव तुम्हारी बहन को ग्रहण नहीं करेगा, मगर इधर देख पड़ता है कि उसने अपने लड़के और नौकर को यहाँ भेजना शुरू कर दिया है!

कुञ्ज ने विस्मय के साथ पूछा—तुमने यह कहाँ सुना था ?

सास ने गम्भीर भाव के साथ कहा—मेरे और भी चार आँखें और कान हैं। और उसका कहना ठीक ही है भैया। उन लोगों ने इतना कहा-सुना, समझाया-मनाया, दौड़-धूप की, लेकिन तुम्हारी बहन किसी तरह जाने को राज़ी नहीं हुई। लोग इस मामले में तरह-तरह की बातें कहेंगे ही। महल्ले में, पास-परोस में, दस-पाँच जवान लड़कों की कमी नहीं है। तुम्हारी बहन भी अब निरी बच्ची नहीं, जवान है। ऐसा रूप, ऐसा कुन्दन का सा रङ्ग और भरी जवानी है। कहावत है कि मन और मति का क्या ठिकाना! ऐसी अवस्था में आदमी का मन बहकते, कुराह में पैर फिसलते कितनी देर लग सकती है भैया ?

कुञ्ज भी अनुमोदन करता हुआ कह उठा—यह तो ठीक है माँ।

कुसुम ने एकाएक सिर उठाकर, भयानक भाव से भौंहें टेढ़ी करके, कहा—तुम यहाँ बैठे क्या कर रहे हो दादा! उठो, जाओ!

कुञ्ज सिटपिटाकर उठने लगा, लेकिन उसकी सास ने गरम होकर कहा—दादा की आँखें ढकने से क्या होगा बेटी? इससे औरों की आँखों पर तो परदा नहीं पड़ सकेगा। यह जो तुम अभी नदी में नहाकर, भीगी धोती पहने, बाल बिखराये, आई हो यह क्या ठीक है? यह रूप देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों का भी मन चञ्चल हो सकता है या नहीं? तुम्हारा दादा ही अपनी छाती पर हाथ रखकर कह दे!

कुसुम ने चिल्लाकर कहा—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ दादा, खड़े-खड़े सुनो नहीं; यहाँ से चले जाओ।

कुसुम के चेहरे का रङ्ग-ढङ्ग और चिल्लाना देख-सुनकर कुञ्ज डर गया। वह वहाँ से उठकर भाग गया। कुसुम ने चूल्हे पर से तरकारी की कड़ाही उतारकर धम से नीचे रख दी। अब वह भी तेज़ी के साथ वहाँ से चल दी।

कुञ्ज की सास के चेहरे पर अपमान के क्षोभ से अन्धकार सा छा गया। वह मुँह बनाये वहीं बैठी रही। उसकी बराबरी करनेवाला कलह-कुशल कोई मनुष्य दुनिया भर में नहीं है, यही उसकी धारणा थी। उसने स्वप्न में भी यह न सोचा था कि यह असहाय अकिञ्चन ग़रीब लड़की इस तरह उसे विस्मित और अप्रतिभ करके अकेली छोड़कर उठ जायगी।

कोई कारण समझ न पाने पर भी कुसुम को इसमें सन्देह न था कि उस दिन उसके दादा की सास लड़ने-झगड़ने का इरादा करके ही यहाँ आई थी। इसके सिवा उसकी पूर्वोक्त बातों का मतलब ठीक इसी तरह का उसे समझ पड़ा कि जैसे वृन्दावन किसी समय उसे ग्रहण करने के लिए तैयार था, तथापि वह किसी गूढ़ कारण से उसके यहाँ नहीं गई। वह गूढ़ कारण सम्भवतः क्या था, यह कुञ्ज की सास से तो छिपा है ही नहीं बल्कि ख़ुद वृन्दावन ने भी उसी का आभास पाकर अपना विचार बदल दिया है—अब वह कुसुम को अपने घर ले जाने को तैयार नहीं। कुञ्ज की सास के इस प्रकार के इशारे से ही कुसुम इस तरह जामे से बाहर हो गई थी। तो भी स्वयं कुसुम को भी जान पड़ा कि इस तरह अपना रसोईघर से उठ जाना अच्छा नहीं हुआ।

कुञ्ज की सास ने उस दिन दिन-भर कुछ खाया-पिया नहीं। अन्त को जब कुञ्ज ने उसकी बड़ी ख़ुशामद की, मनाया, तब कहीं जाकर रात को सास ने भोजन किया। सास के मान की मरम्मत के लिए कुञ्ज दिन भर बहन को बकता-झकता रहा किन्तु क्रोध और मान-मनौवल आदि का अभिनय समाप्त हो जाने के बाद भी उसने बहन से एक दफ़े भी कुछ खाने-पीने के लिए नहीं कहा। दूसरे दिन कुञ्ज की सास जब अपने घर जाने लगी तब कुसुम पास जाकर उसके पैर छूकर

खड़ी हो गई किन्तु इतने पर भी वह (सास) उससे मुँह से नहीं बोली। बल्कि दामाद को सुनाकर यह अवश्य कहा— कुञ्जनाथ को अब घर-बार, ज़मीन-जायदाद सब देखना है; यहाँ बैठे-बैठे बहन की रखवाली करते रहने से तो काम नहीं चलेगा!

कुसुम की ओर से इस बात का कोई जवाब न था। इसी से उसने चुपचाप सिर झुकाकर सुन लिया। सच तो है! दादा इधर-उधर दोनों तरफ़ कैसे सँभाल सकता है?

कुञ्ज की सास जिस दिन आई थी उस दिन से दो महीने बीत गये। इसी बीच में कुञ्ज को उसकी सास ने कुछ का कुछ बना लिया है। अब वह अपने घर में बहुत कम रहता है। अगर कभी आता भी है तो बहन से अच्छी तरह बात ही नहीं करता। कुसुम सोचती है, भोला-भाला भाई ऐसा कैसे बन गया? वह अगर केवल इतना जानती कि संसार में भोले-भाले लोग ही इस तरह बदल जाते हैं, उसके जैसे सरल और थोड़ी बुद्धि के आदमी ही इस तरह आँखें बदल सकते हैं, व्यवहार में इतना भारी परिवर्तन कर सकते हैं, तो भाई का यह व्यवहार उसे इतना असह्य न होता। भाई और बहन के बीच वह पहले का सा स्नेह नहीं है, और अब उनमें पहले का सा झगड़ा भी नहीं होता। लड़ने-झगड़ने को आजकल कुसुम का जी भी नहीं चाहता। पाठकों को स्मरण होगा, एक दिन कुसुम घर में रात को अकेले रहने की बात सोचकर भय

से व्याकुल हो उठी थी; किन्तु अब अक्सर अधिकांश रातें उसे अकेले ही काटनी पड़ती हैं। उसके दुःख और बेबसी ने अवश्य ही भय के भाव को भगा दिया है।

कुसुम इस सम्पूर्ण दुःख को भी कुछ नहीं समझती; उसके हृदय में तो केवल यही ख़याल काँटे की तरह चुभता रहता है कि आज वह अपने भाई के लिए गलग्रह (गले पड़ी बोझा) हो रही है। रह-रहकर केवल यही सोचती रहती है कि अचानक वह मर भी जाय तो, जान पड़ता है, दादा एक बार उसके लिए रोयेगा भी नहीं, एक बूँद आँसू भी नहीं गिरावेगा! दादा की इस भविष्य निष्ठुर त्रुटि को तब वह अपने आँसुओं से धो बहाने के लिए दरवाज़ा बन्द करके भीतर बैठ रहती है। उस दिन फिर किवाड़े नहीं खुलते। जब कभी बहुत ही डर लगता है तब चरन की बातें याद करने लग जाती और उन्हीं में मन बहलाती है। केवल वही "माँ माँ" कहता हुआ, जब-तब दौड़ा आता है, और किसी तरह उसे छोड़कर जाना नहीं चाहता।

एक दिन सब तरह के लाज-सँकोच को ज़बरदस्ती हृदय से हटाकर कुसुम ने चरन के हाथ एक चिट्ठी वृन्दावन को लिख भेजी थी। उसमें जो इशारा था वह वृन्दावन के निकट सर्वथा निष्फल हुआ! कुसुम जिस उत्तर की प्रत्याशा करके राह देख रही थी वह तो आया ही नहीं, मामूली दो सतरें लिखकर काग़ज़ का पर्चा भी उसने नहीं भेजा।

आये क्या, केवल कुछ रुपये। निरुपाय होकर कुसुम को वे रुपये ही लेने पड़े।

कल रात को कुञ्ज घर आया था। सवेरे ही लौट जाने के लिए तैयार होकर बाहर जाते समय कुसुम पास आकर ज़रा ठिठक गई। आजकल किसी मामले में, किसी बात के लिए, कुसुम अपने दादा से किसी तरह का आग्रह या अनुरोध नहीं करती, और न उसके किसी काम में रोक-टोक ही करती है। आज न जाने क्या हुआ कि वह धीमे स्वर से कह बैठी—क्या अभी जाओगे दादा ? मुझे रसोईं करते देर नहीं लगेगी, खा-पीकर न जाओ।

कुञ्ज ने गरदन घुमाकर मुँह बनाकर कहा—जो सोचा था, वही हुआ। जाते समय पीछे से टोक दिया न आख़िर को !

कुसुम को लाचारी हालत ने बहुत कुछ बरदाश्त करना सिखा दिया था। किन्तु इस समय कुञ्ज के अकारण बिगड़ने और मुँह बनाने को वह न सह सकी। उसके देह भर में आग सी लग गई। उसने पलटकर उसी तरह मुँह तो बेशक नहीं बनाया, मगर बहुत ही कठोर और कड़े स्वर में कह उठी—डरो नहीं दादा, तुम मर न जाओगे। मेरे टोक देने में जो इतना विष भरा होता तो अब तक तुम्हारा जीना मुशकिल था। मैंने आज तक हज़ारों दफ़े इसी तरह तुम्हें टोका होगा ; अगर तुम मनुष्य होते तो न जाने कब के मर चुके होते।

कुञ्ज ने कहा—क्या कहा ? मैं मनुष्य नहीं हूँ !

"कभी नहीं। मनुष्य क्या तुम तो कुत्ता-बिल्ली भी नहीं हो। वे—जानवर—भी तुमसे कहीं अच्छे हैं। वे ऐसे नमकहराम नहीं निकलते।" इतना कहकर तेज़ी से अपनी कोठरी में घुसकर कुसुम ने धड़ाम से किवाड़े बन्द कर लिये। कुञ्ज कुछ देर भौचक्का सा खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे चला गया।

बाहर का सदर दरवाज़ा उसी तरह खुला पड़ा रहा। क़रीब घण्टे भर के बाद वृन्दावन उसी खुले द्वार से चुपचाप भीतर आया। घर की दशा देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

कुञ्ज की कोठरी में ताला बन्द था। कुसुम की कोठरी भीतर से बन्द थी। रसोईंघर के किवाड़े खुले पड़े थे। वृन्दावन ने जैसे झाँककर भीतर देखा, वैसे ही एक कुत्ता आहार छोड़कर 'पें' की आवाज़ से शर्म और अफ़सोस ज़ाहिर करता हुआ दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ। वृन्दावन ने देखा, रसोईघर के भीतर कुछ सामग्री पक चुकी है, कुछ अधकचरी जहाँ-की-तहाँ पड़ी है। चूल्हा बुझा पड़ा है।

नौकर के साथ चरन पैदल आ रहा था, इसी से कुछ पिछड़ गया था। कोई दस मिनट के बाद ऊँचे स्वर में 'माँ माँ' की पुकार से महल्ले के लोगों को अपने आने की सूचना देता हुआ चरन आ पहुँचा। एकाएक लड़के की आवाज़ सुनकर दरवाज़ा खोलकर बाहर निकलते ही कुसुम की आँसुओं से आर्द्र आँखों की शान्त विपन्न दृष्टि सबसे पहले वृन्दावन ही के विस्मय-विह्वल जिज्ञासु नेत्रों पर जा पड़ी।

कुसुम को आशा न थी कि एकाएक वृन्दावन आवेंगे। आँखें चार होते ही कुसुम झिझककर पीछे हट गई। आँचल से माथा ढककर उसने कोठरी के भीतर से आसन लाकर बिछा दिया। वैसे ही चरन दौड़ कर उसके पैरों से लिपट गया। उसे गोद में उठाकर, बार-बार मुँह चूम कर, कुसुम ज़रा आड़ में खड़ी हो गई।

माँ के मुँह की ओर देखकर चरन रुआँसा होकर बाप से बोला—बप्पा, माँ रो रही है।

वृन्दावन पहले ही ताड़ गया था। उसने पूछा—बात क्या है? मुझे बुला क्यों भेजा था?

कुसुम तब तक अपने को नहीं सँभाल पाई थी! कुछ जवाब न दे सकी।

वृन्दावन ने फिर पूछा—तुमने दादा से मुलाक़ात करने के लिए चिट्ठी में लिखा था। कहाँ हैं वे?

अबकी कुसुम ने रुद्ध कण्ठ से कहा—मर गये।

वृन्दा०—अयँ! मर गये? क्या हुआ था?

वृन्दावन के गम्भीर स्वर में जो प्रच्छन्न व्यंग्य था वह, इस दुःख के समय, कुसुम को बहुत बुरा लगा। वह अपनी परिस्थिति को भूलकर क्रोध में आ गई। "देखो, दिल्लगी तो करो नहीं। मेरी देह में आग लगी हुई है, जलकर ख़ाक हुई जा रही हूँ—इस समय मसखरी नहीं सोहाती! तुम्हें बुला भेजा है, इसलिए क्या इस तरह उसका बदला देने आये हो?—" कहते-कहते कुसुम रो पड़ी।

कुसुम का दवे गले से रोना वृन्दावन ने स्पष्ट सुन लिया था; लेकिन वह रोना उसे रत्ती भर भी विचलित न कर सका। दम भर बाद फिर पूछा—किसलिए बुला भेजा था ?

कुसुम ने आँखों के आँसू पोंछकर भारी गले से कहा—जब कोई न आवे तब फिर मैं किससे कहूँ ? पहले तो भला कभी-कभी अपने काम से इधर आते-जाते भी रहते थे, अब तो भूल कर भी यह राह नहीं चलते।

वृन्दावन ने कहा—भूल नहीं सका, इसी से तो इधर आता-जाता नहीं। भूल सकता तो शायद आता-जाता। ख़ैर, बताओ, क्या कहना है ?

कुसुम—इस तरह जल्दबाज़ी करने से कहीं कुछ कहते-सुनते बनता है भला ?

वृन्दावन ने हँस दिया ! फिर शान्त स्वर में कहा—मैं जल्दबाज़ी नहीं करता। अच्छी तरह, सहूलियत के साथ सुनने को तैयार हूँ। अच्छा तो है, जिस तरह कहने में सुबीता हो उसी तरह कहो न।

कुसुम—बहुत दिनों से मैं एक बात पूछना चाहती हूँ। भला यह किसने मशहूर कर रक्खा है कि मैं बाल बिखेरे राह-घाट में अपने रूप की बहार दिखाती घूमती-फिरती हूँ ?

यह प्रश्न सुनकर वृन्दावन सन्न हो गया। दम भर चुप रहकर उसने कहा—मैंने ही मशहूर कर रक्खा है। ख़ैर, और क्या कहना है ?

कुसुम—मैं यह नहीं कहती कि तुमने ऐसी बात कही है। मेरे मन में कभी ऐसा विचार ही नहीं आया। मगर—

बात पूरी होने के पहले ही वृन्दावन बीच में कह उठा—मगर उस दिन तुमने कहा भी था, और सोचा भी। तुमने मेरे मुँह पर ही कहा था कि मैं बड़ा आदमी होकर सिर्फ़ तुम लोगों को नीचा दिखाने के लिए ही माँ और भाइयों के साथ न्योता खाने आया हूँ। उस दिन जब मैं तुम्हारा अपमान कर सका तब क्या आज नहीं कर सकता? उस अपराध का दण्ड मेरी माँ को देने में तुमने भी तो कुछ कसर नहीं रख छोड़ी।

कुसुम ने अत्यन्त व्यथित और लज्जित होकर धीरे-धीरे कहा—मुझसे बेशक बहुत बड़ा अपराध हुआ। मैं उस चूक के लिए अनगिनती अपराध स्वीकार करती हूँ। मैं उस समय तुमको पहचान नहीं सकी थी।

वृन्दावन—तो अब पहचान लिया है?

कुसुम चुप रही। वृन्दावन भी चुप रहा। फिर सहसा कह उठा—अच्छी याद आई। एक कुत्ता तुम्हारे रसोईघर में घुसकर, बरतनों में मुँह डालकर, सब सामग्री जूठी कर गया है।

कुसुम ने कुछ भी खेद या घबराहट नहीं प्रकट की। बोली—कर गया होगा। मैं तो यों भी न खाती। पहले से जानती तो रसोई ही न चढ़ाती।

वृन्दावन—आज एकादशी* है क्या ?

कुसुम ने गरदन झुकाकर कहा—मालूम नहीं। मैं यह कुछ नहीं करती।

वृन्दावन—नहीं करतीं ?

कुसुम उसी तरह सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही।

वृन्दावन ने सन्देह के स्वर में पूछा—पहले तो करती थीं, अब एकाएक क्यों छोड़ दिया ?

बार-बार चोट पहुँचाने से कुसुम अधीर हो उठी थी। उसने खीझकर कहा—नहीं करती, मेरी इच्छा। जान-बूझ कर कोई अपना सर्वनाश नहीं करना चाहता, इसी लिए नहीं करती। इसमें शक नहीं कि दादा का व्यवहार अब सहा नहीं जाता है; लेकिन सच कहती हूँ, तुम्हारे इस व्यवहार से तो गले में फाँसी लगाकर मर जाने को जी चाहता है।

वृन्दावन ने कहा—ऐसा न करना। मेरे व्यवहार का विचार बाद को होगा, न भी हो तो कुछ हानि नहीं; लेकिन यह तो बताओ कि दादा का व्यवहार क्यों सहा नहीं जाता है ?

---

* बङ्गाल में सभी विधवाएँ, बारहों महीने, निर्जल एकादशी का व्रत करती हैं। यह व्रत विधवाओं के लिए अनिवार्य है। एकादशी-व्रत के दिन चाहे प्राण भी निकलते हों, मगर विधवा के मुँह में बूँद भर पानी डालना पाप समझा जाता है। इसी से एकादशी के दिन सधवाएँ कभी उपवास नहीं करतीं। वे समझती हैं कि इससे स्वामी का अकल्याण होगा।

कुसुम ने बहुत ही उत्तेजित होकर उत्तर दिया—वह दूसरे महाभारत की कथा है; मुझमें इतना धैर्य नहीं कि तुमको बैठकर सुनाऊँ। सारांश उसका यही है कि दादा अपनी ज़मीन-जायदाद छोड़कर अब मेरी देख-रेख या रखवाली नहीं कर सकेंगे—उनकी सास की आज्ञा नहीं है। मुझे खाने-पीने और पहनने को अन्न-वस्त्र देना उन्होंने बन्द कर दिया है। जो चरन अपनी माँ के निर्वाह का भार अपने ऊपर न लेता तो आज से बहुत दिन पहले ही मुझे सूख-सूखकर भूख से मरने के लिए विवश होना पड़ता। अब मैं—

अकस्मात् रुककर कुसुम ने सोचकर देखा कि और आगे कुछ कहना उचित है या नहीं। उसके बाद फिर उसी सिल-सिले में कहना शुरू किया—अब मैं पूर्ण रूप से तुम लोगों के गले पड़ी हूँ। इसी से अब मैं एक दिन, एक घड़ी भी यहाँ रहना नहीं चाहती।

वृन्दावन ने हँसकर पूछा—इसी से अब यहाँ रहने की इच्छा नहीं है?

कुसुम ने एक बार आँख उठाकर ही नज़र नीचे कर ली। इस सहज हास्यसहित प्रश्न में जो तीखे ताने की बरछी थी, उसने पूर्ण रूप से कुसुम के हृदय में घुसकर उसे चोट पहुँचाई।

वृन्दावन ने फिर कहा—चरन अवश्य अपनी माँ के खाने पहनने का सारा भार ले लेगा। लेकिन सवाल यह है कि तुम कहाँ रहना चाहती हो?

कुसुम ने वैसे ही सिर झुकाये हुए कहा—यह मैं क्या जानूँ ? वे ही लोग जानें।

वृन्दावन—वे लोग कौन ? मैं ?

कुसुम ने चुप रहकर अपनी सम्मति जताई।

वृन्दावन ने कहा—यह होने का नहीं। मैं तुम्हारी किसी बात में हाथ नहीं डाल सकता। यह अधिकार सिर्फ़ माँ को है। तुमने उनके साथ कैसा ही व्यवहार क्यों न किया हो, किन्तु अगर तुम चरन का हाथ पकड़कर उनके पास जाओगी तो वे अवश्य तुम्हारा इन्तज़ाम कर देंगी। लेकिन तुम्हारे दादा ?

कुसुम की आँखों से आँसू गिर पड़े। उन्हें पोंछकर उसने कहा—कह तो चुकी, मेरे दादा मर गये। तुम मुझसे अम्मा के पास जाने को कहते हो, मगर मैं किस तरह दिन को पैदल चलकर फ़क़ीरनी की तरह तुम्हारे गाँव में घुसूँगी ?

वृन्दावन—यह मैं नहीं जानता, लेकिन वहाँ तुम जा सकतीं तो अच्छा होता। इसके सिवा और कोई सीधी राह मुझे तो देख नहीं पड़ती।

कुसुम ने दम भर स्थिर भाव से चुप रहकर कह दिया—तो मैं न जाऊँगी।

वृन्दावन—तुम्हारी ख़ुशी।

संक्षिप्त और सरल उत्तर था। इसके भीतर छिपे हुए अर्थ में कुछ भी अस्पष्टता न थी। अब कुसुम सचमुच डरी।

वृन्दावन और कुछ कहता है या नहीं, यह सुनने के लिए कई मिनट तक कुसुम उत्कण्ठा के साथ कान खड़े किये अपेक्षा करती रही। इसके बाद बहुत ही नम्र और कुण्ठित भाव से धीरे-धीरे उसने कहा—लेकिन यहाँ भी तो अब मेरे खड़े होने को जगह नहीं है। मैं दादा को दोष देना नहीं चाहती। क्योंकि अगर कोई अपनी बुराई करके दूसरे का भला न करना चाहे तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता। मगर तुम तो इस तरह मुझे त्याग नहीं कर सकते—मुझसे नाता नहीं तोड़ सकते।

वृन्दावन ने कुछ उत्तर न देकर उठकर कहा—"बहुत देर हो गई। अरे चरन, तू यहीं रहेगा या चलेगा? यहीं रहेगा? अच्छा, यहीं रह। देखो, तुम्हारा जी चाहे तो चली आना। मुझे विश्वास है कि उस घर में लड़के का हाथ पकड़कर माँ के सामने जाकर खड़े होने से कुछ तुम्हारा बहुत बड़ा अपमान न होगा। ख़ैर, मैं जाता हूँ।" इतना कहकर वृन्दावन ने जैसे जाने के लिए पैर आगे बढ़ाया वैसे ही सहसा चरन को गोद से उतारकर कुसुम सीधी तनकर खड़ी हो गई, और बोली—आज मेरी समझ में सब आ गया। मैंने अपने इतने बड़े दुःख को ख़ुद सुनाकर आश्रय की प्रार्थना की। फिर भी जब तुमने खड़े होकर लापर्वाही के साथ यह जवाब दे दिया कि 'बहुत देर हो गई, अब जाता हूँ;' मैं कितनी निराश्रय और असहाय हूँ, यह स्पष्ट जानकर भी जब तुमने

आश्रय देना नहीं चाहा, तब मुझे तुमसे कुछ कहना नहीं है। मैं अच्छी तरह जान गई कि तुमसे किसी बात की आशा करना व्यर्थ है, फिर भी मैं तुमसे और एक प्रश्न करना चाहती हूँ। बतलाओ, ठीक-ठीक उत्तर दोगे ?

वृन्दावन ने क्षोभ और विस्मय के साथ सिर उठाकर कहा––दूँगा। मैंने तो आश्रय देना अस्वीकार नहीं किया, बल्कि तुम्हीं उसे लेना बारम्बार अस्वीकार करती आ रही हो।

कुसुम ने दृढ़ता-व्यञ्जक स्वर में कहा—बिलकुल झूठ। उस दिन बदनसीबी ने मुझे न जाने कैसे अन्धा कर दिया था! मेरी ऐसी दुर्बुद्धि हो गई कि अम्मा के हृदय को चोट पहुँचानेवाला वह बहुत बड़ा अपराध कर बैठी! मेरे अन्तर्यामी ही जानते हैं कि उसका दुःख मेरे मन से मरने पर भी नहीं मिटेगा। उसी का तो यह फल आज मुझे मिल रहा है कि अपनी माँ (सास), अपना स्वामी, अपना पुत्र और अपना घरबार आदि सब कुछ रहते भी मैं पराये गले की बला हूँ, निराश्रय और असहाय हूँ! आज तक मैंने अपनी ससुराल का मुँह नहीं देखा। मेरा अपराध कितना ही भारी क्यों न हो, आख़िर मैं उस घर की बहू तो हूँ। तुम किस तरह मुझको दिन में सब लोगों के सामने पाँव-पैदल एक फ़क़ीरनी की तरह भेजना चाहते हो? तुम्हें और कोई सीधी राह इसके सिवा देख नहीं पड़ती। जानते हो, क्यों नहीं देख पड़ती? हम लोग बड़े दुखी हैं, ग़रीब हैं; मेरी माँ ने भीख माँगकर हम दोनों

भाई-बहनों को पाला-पोसा और इतना बड़ा किया है; दादा सिर पर टोकरी रखकर फेरी लगाकर गुज़र करते रहे; इसी लिए तुमको मेरे उद्धार की और कोई सीधी राह नहीं देख पड़ती। इसी कारण तुमने यह सोचा होगा कि भिखारी की लड़की भिखारिनी की तरह जायगी तो इसमें उसका अपमान ही क्या है—यह उसके लिए कोई नई बात तो है ही नहीं। लेकिन यह केवल तुम्हारी भारी भूल ही नहीं है, यह तुम्हारा असत्य घमण्ड है! मैं यहीं भूख से सूख कर मर जाऊँगी, मगर तुम्हारे आगे हाथ फैलाकर तुम्हारे लिए हँसी-ठट्ठे का सामान नहीं जुटाऊँगी!

वृन्दावन सन्नाटे में आकर खड़ा-खड़ा सब सुनता रहा। अन्त को उसने धीरे-धीरे कहा—अच्छा, जाता हूँ। अब मुझे और कुछ कहना नहीं है।

कुसुम ने उसी भाव से उसी स्वर में जवाब दिया—जाओ। तनिक ठहरो, एक बात और कहनी है। दया करके झूठ न बोलना। मैं पूछती हूँ, मेरे बारे में तुम्हें क्या कुछ सन्देह हुआ है? अगर हुआ हो तो मैं तुम्हारे सामने खड़े होकर क़सम खाती हूँ—

वृन्दावन ने जाने के लिए एक पैर आगे बढ़ाया था। उसने घूमकर, खड़े होकर, अत्यन्त आश्चर्य के साथ बीच ही में रोककर कहा—"यह क्या करती हो? बेकार क़सम क्यों खाती हो? मैंने तो तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं सुना।"

फिर कुसुम के आधे ढके हुए मुख की ओर दृष्टि डालकर कोमल, किन्तु दृढ़, स्वर में कहा—"इसके सिवा किसी ग़ैर स्त्री के चाल-चलन और कार्य-कलाप पर नज़र रखने की मेरी आदत भी नहीं, और वैसा करना मेरी समझ में किसी पुरुष के लिए उचित भी नहीं है। तुम्हारे स्वभाव और चरित्र के बारे में जानने का मुझे कुछ भी कौतूहल नहीं है; और इस बात की चर्चा या आलोचना भी मैं नहीं करना चाहता। मैं सभी को अच्छा समझता हूँ; तुमको भी बुरा नहीं समझता।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे बाहर चला गया। कुसुम इस तरह, जैसे उस पर गाज गिर पड़ी हो, चुपचाप सन्नाटे में आकर खड़ी रही।

चरन ने कहा—माँ, नदी में नहाने न चलोगी?

कुसुम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। चरन को गोद में उठा कर धीरे-धीरे एक-एक पैर रखती हुई वह घर के भीतर आकर अपनी कोठरी में पलँग पर पड़ रही, और बच्चे को ज़ोर से छाती से चिमटाकर फफक-फफक कर रोने लगी।

८

बहुत दिन बीत गये। माघ समाप्त हो गया, फागुन है। चरन वहीं उस बार जब से गया तब से फिर नहीं आया। यह बात बहुत अच्छी तरह प्रकट थी कि उसे ज़बरदस्ती रोक रक्खा गया है, वह आने नहीं पाता। इसका मतलब यही है कि कुसुम की ससुराल के लोग उससे किसी तरह का वास्ता रखना

नहीं चाहते। इस प्रकार ससुराल की कोई ख़बर नहीं मिलती। कुसुम ने भी दृढ़ प्रतिज्ञा कर रक्खी है कि अब वह कोई चिट्ठी-पत्री ससुराल को लिखकर अपने को और अधिक अपमानित नहीं करेगी। इधर उसके दादा कुञ्ज के रङ्ग ढङ्ग वही एक ही तरह के बने हुए थे। सब ओर से, सब तरह से, इस तरह निराश और दुःखित हो रही कुसुम का हृदय फटा-सा जा रहा था। जान पड़ता था, जैसे उसके प्राण अब निकल जायँगे। जिस दिन वृन्दावन से पिछले परिच्छेद में वर्णित बातचीत हुई थी उसी दिन से प्रकाश्य रूप से घर के बाहर निकलना अथवा पहले की तरह अपनी सखी-सहेलियों से मिलना-जुलना और हँसना-बोलना कुसुम ने बन्द कर दिया था। कुछ रात रहते ही वह नदी से जल भर लाती है। बाज़ार लगने के दिन गोपाल की माँ उसके लिए सौदा-सुलुफ़ ख़रीद लाती है। इस तरह बाहर के सब तरह के संसर्ग से अपने को अलग करके कुसुम भारी चिन्ता और व्यथा के बोझ से दबी हुई लम्बी रातें और दिन सचमुच बड़े दुःख से बिता रही थी।

वह बहुत अच्छा सुई का काम बनाना और सिलाई करना जानती थी। अब वह सिलाई और क़सीदे का काम करके ही अपना निर्वाह करने लगी। जो कोई जितना मेहनताना अपनी ख़ुशी से दे देता वही हँसी-ख़ुशी से ले लेती। अगर कोई देना भूल जाता या जान-बूझ कर न देता तो वह भी जैसे उसे भूल जाती—किसी से तगादा न करती थी। इन

सब महत् गुणों के रहने से उसे बहुत काम मिलता रहता था। गाँव और परोस के घरों की अधिकांश मसहरी, तकिए के गिलाफ़ और बिछौने की चादर वग़ैरह वही बना देती थी। उसकी की हुई सिलाई और क़सीदा गाँव में घर-घर नज़र आता था। आज वह तीसरे पहर के समय अपनी कोठरी के सामने चटाई बिछाकर अधबनी मसहरी का काम समाप्त करने बैठी थी। उसके हाथ की सुई हाथ ही में जहाँ की तहाँ थी। वह उसी प्रथम दिन की सब घटनाएँ—आदि से अन्त तक—याद करके अपने मन को बहलाने लगी, जिस दिन उसकी सास और स्वामी आदि उसके यहाँ आये थे।

कुसुम अपने हृदय में उन्हीं घटनाओं को उलट-पुलटकर सोचने और नये सिरे से उनका मनन करने लगी। उस दिन दल-बल सहित वे सब लोग सबेरे ही से भागे हुए दादा (कुञ्ज) के घर दावत खाने आये थे, और बड़ी मुश्किल में—बड़े असमञ्जस में—पड़कर उसे लाज-शरम छोड़कर किसी ढीठ और तेज़तर्रार औरत की तरह पहले-पहल स्वामी से बातचीत करनी पड़ी थी। आज कुछ यह नई बात न थी। कुसुम के लिए जब दुःख का वेग असह्य हो उठता था तभी वह सब काम-काज छोड़कर चुपचाप इसी प्रिय स्मृति को ले बैठती थी। माता जैसे अपने एकमात्र बच्चे को लेकर तरह-तरह से हिलाती-डुलाती, उछालती, दुलराती और खेल के मिस उसका उपभोग करती है, वैसे ही वह भी अपनी केवल इसी स्मृति

को अनिर्वचनीय प्रीति के साथ हर पहलू से, हर तरफ़ से, घुमा-फिराकर देखती और असीम तृप्ति का अनुभव करती थी। उसका सारा दुख उतनी देर तो जैसे बिलकुल रही न जाता था। दोनों के वे उस दिन के सवाल-जवाब, औरों से छिपाकर रसोई बनाने की वह तैयारी, उसके बाद परोस-कर स्वामी और देवर वगैरह को खिलाना-पिलाना, सास की सेवा, सबके पीछे दिन ढले वह अपने लिए रूखा-सूखा ठण्डा जो कुछ सामान बच रहा था—

कुसुम की आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे। स्त्री का जन्म लेकर इससे अधिक और सुख तो वह मन में सोच भी नहीं सकती थी और न कामना ही करती थी। उसे जान पड़ता था, जो स्त्रियाँ नित्य ये सब काम अपने स्वामी के घर में रहकर करती हैं, उनके लिए शायद इस संसार में और कोई सुख मिलने को बाक़ी नहीं रह जाता।

कुसुम को याद आ गई उसी अन्तिम भेंट के दिन की बात-चीत जिस दिन वे (वृन्दावन) सब सम्बन्ध-सूत्र तुड़ाकर चले गये थे। उस दिन कुसुम ने आप भी नहीं रोका, बल्कि सम्बन्ध तोड़ने में सहायता ही की थी। किन्तु उस समय उसने चरन के बारे में कुछ नहीं सोचा था। इन्हीं के साथ उसका भी नाता टूट सकता है, और वह भी उससे दूर चला जा सकता है, यह उस समय दारुण अभिमान की हलचल में उसे सूझा ही नहीं। अब जितने ही दिन बीतते थे उतना ही चरन के

बिछुड़ने का डर बढ़ता जाता था, और उस डर के मारे घड़ी-घड़ी भर पर उसके हृदय का रक्त सूखता जाता था। वह रह रहकर यही सोचती थी कि कहीं ऐसा न हो कि चरन भी यहाँ न आने पावे! अच्छा, सचमुच ही अगर वह न आया तो?—तब तो फिर वह एक घड़ी भी उसके बिना कैसे जियेगी? सबसे बढ़कर दुःख यह था कि जो सन्देह उसके मन में पहले था, जो इस दुर्दिन में शायद उसे कुछ बल भी दे सकता, वह अब नहीं रहा—एकदम दूर हो गया है। उसके अन्तःकरण के भीतर रहनेवाला सोया हुआ विश्वास जाग उठकर दिन-रात उसके कानों में कह रहा है कि सब झूठ है—सब मिथ्या है! उसके बचपन के कलङ्क और बदनामी की असलियत कुछ भी नहीं है—वह सच नहीं है! वह हिन्दू के घर की लड़की है, इसलिए जो पाप और अन्याय है वह किसी तरह कभी उसके हृदय के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता! जान में हो, या बिना जाने, हिन्दू के घर की लड़की स्वामी के सिवा और किसी मर्द को कभी इस तरह अनन्यभाव से इतना प्यार नहीं कर सकती। यह सोलहों आने सत्य है। पति के सिवा और किसी की सेवा करने को, और किसी के काम में लगे रहने को सारा शरीर और मन इस तरह मतवाला नहीं हो उठता। वे अगर मेरे स्वामी न होते तो भगवान् अवश्य मुझे सुमार्ग दिखा देते—हृदय के भीतर कहीं, किसी क्षुद्र कोने में ही, किञ्चिन्मात्र लज्जा-सङ्कोच का लेश तो अवश्य बाक़ी रहने देते।

आज बाज़ार का दिन है। गोपाल की माँ को बाज़ार गये बहुत देर हुई। अभी आती होगी। इसी लिए बाहर का दरवाज़ा खुला था। एकाएक दरवाज़ा ठेलकर श्रीमान् कुञ्ज-नाथ बाबू, नौकर को साथ लिये, विलायती बढ़िया नये पम्प-जूते की मचमचाहट से पास-परोस के लोगों के मन में विस्मय और ईर्ष्या पैदा करते हुए घर के भीतर दाखिल हुए। कुसुम को मालूम हो गया, मगर लज्जा के मारे आँसू-भरी लाल आँखें उठाकर उधर देख न सकी।

कुञ्ज ने सीधे बहन के सामने आकर कहा—तेरा वृन्दा-वन तो फिर व्याह कर रहा है कुसुम!

कुसुम के कलेजे की धड़कन एकाएक थम सी गई। वह कठपुतली की तरह वैसे ही सिर झुकाये बैठी रही।

कुञ्ज ने स्वर ऊँचा करके फिर कहा—जल में रहकर मगर से वैर! देखूँगा, मुझसे विरोध करके बचा कैसे गाँव में रहता है! मैं देखना चाहता हूँ कि नन्दा बैरागी कितने बड़े बाप का बेटा है। मेरी ज़मींदारी में रहकर मेरा ही अपमान करने की तैयारी!

कुसुम की समझ में कोई बात न आई। उसने बड़े कष्ट से पूछा—नन्दा बैरागी कौन?

कुञ्ज ने वैसे ही स्वर में कहा—और कौन, मेरी ही रिआया है। मेरे ही तालाब के किनारे घर बनाकर बसा हुआ है। घर में आग लगवा दूँगा। उसी हरामज़ादे की

तो लड़की है जिससे व्याह होगा। इसी फागुन में होगा। सब वन्दोवस्त हो गया है।—ए भूतो, ज़रा चिलम तो भर।

कुसुम ने अभी तक आँख ही नहीं उठाई थी। इसी से नौकर के आने का उसे ज्ञान न था। अब नौकर को देखते ही वह सिमटकर सँभलकर बैठ गई।

कुञ्ज ने नौकर से पूछा—क्यों रे भूतो, नन्दा की छोकरी देखने में कैसी है?

भूतो ने कुछ सोच-समझ कर उत्तर दिया—अच्छी है।

कुञ्ज ने बिगड़कर कहा—क्या कहा—अच्छी है? कभी नहीं। देखने में मेरी बहन जैसी है भला? धत्—ऐसा रूप भला तूने कभी कहीं देखा है?

भूतो के जवाब देने से पहले ही कुसुम उठकर कोठरी के भीतर चली गई।

दम भर बाद कुञ्ज नारियल गुड़गुड़ाता हुआ कुसुम की कोठरी के सामने आकर बोला—क्यों कुसुम, मैंने कहा था कि नहीं! बिन्दा बैरागी के बराबर निमकहराम बज्ज़ात कोई न होगा। क्यों—मेरा कहा ठीक निकला कि नहीं? माँ (सास) कहती हैं—वेद चाहे झूठ हो जाय, मगर मेरे कुञ्ज-नाथ की बात झूठी नहीं हो सकती।—क्यों भूतो, माँ कहती हैं कि नहीं?

कोठरी के भीतर से कुछ जवाब नहीं आया; लेकिन एक तरह का रोने का सा अस्पष्ट शब्द सुनाई पड़ने लगा।

कुञ्ज न जाने क्या सोचकर हाथ से हुक़्क़ा रख दरवाज़ा ठेलकर कोठरी के भीतर जा खड़ा हुआ। कुसुम पलँग पर पट पड़ी हुई थी। कुञ्ज क्षण भर उसकी ओर ताकता रहा। बहुत दिनों के बाद आज एकाएक उसकी आँखों में जलन सी होने लगी, और आँसू निकल पड़े। हाथ से आँसू पोंछकर कुञ्ज धीरे-धीरे उस पलँग के एक कोने में बैठ गया। बहन के सिर पर एक हाथ रखकर धीरे-धीरे उसने कहा--तू ज़रा भी डरना नहीं कुसुम! यह ब्याह मैं किसी तरह न होने दूँगा। देख लेना, तेरा दादा जो कुछ कहता है, वही करता है कि नहीं! लेकिन बहन, तेरा भी तो दोष है; तब तूने भी तो ससुराल में रहना नहीं मंजूर किया। हम सबने मिल कर न जाने कितना समझाया-बुझाया, लेकिन तूने किसी की बात न मानी!

कुञ्ज की अन्त की बातें आँसुओं के वेग से साफ़ नहीं सुन पड़ीं, उसका कण्ठ आँसुओं से रुँध गया।

कुसुम अब अपने को सँभाल न सकी—ज़ोर से रो उठी। अपने लिए दादा के मन में अभी तक स्नेह का लेश होने की आशा उसने बहुत दिनों से छोड़ दी थी। वह समझ चुकी थी कि अब भाई के हृदय में उसके स्नेह के लिए तिल भर भी स्थान नहीं है।

कुञ्ज की आँखों से आसुओं की धारा बह चली। वह चुपचाप बहन के सिर पर हाथ फेरकर उसे सान्त्वना देने लगा।

शाम हो गई। कुञ्ज ने और एक बार कुर्ते की आस्तीन से अच्छी तरह आँसू पोंछकर कहा—तू घबरा नहीं बहन, मैं कहे जाता हूँ कि यह व्याह किसी तरह न होने दूँगा।

अब की कुसुम बोली। उसने रोते-रोते कहा—तुम इसमें रुकावट न डालना दादा।

कुञ्ज ने अत्यन्त विस्मित होकर कहा—रुकावट न डालूँगा? मेरी आँखों के सामने यह व्याह होगा, और मैं खड़ा-खड़ा चुपचाप देखता रहूँगा? तू कहती क्या है कुसुम?

कुसुम ने फिर कहा—नहीं दादा, तुम इसमें रोक-टोक मत करना।

कुञ्ज ने क्रुद्ध होकर कहा—रोक-टोक न करूँ? ज़रूर करूँगा! इससे तेरा अपमान न हो न सही, लेकिन मैं तो न सह सकूँगा। वह मेरी प्रजा—तू कहती क्या है! लोग सुनकर मुझे धिक्कार न देंगे—छी-छी न करेंगे?

कुसुम तकिए में मुँह छिपाकर बारम्बार सिर हिलाती हुई कहने लगी—मैं मना करती हूँ दादा, तुम किसी तरह इसमें रुकावट न डालना। हमारे साथ उन लोगों का कोई नाता नहीं है, अब और झगड़ा करके बदनामी न बढ़ाना—व्याह होता है तो होने दो।

कुञ्ज ने बहुत ही ख़फ़ा होकर कहा—नहीं, किसी तरह न होने पावेगा।

कुसुम—न होने पावेगा! क्यों? मुझे छोड़कर उन्होंने एक बार व्याह किया था कि नहीं? न हो, अब एक बार और कर लेंगे। मेरे लिए दोनों ही बराबर हैं। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ दादा, नाहक़ रोक-टोक करके, झगड़ा-हङ्गामा करके मेरी इज्जत मिट्टी न कर देना। जिसमें उन्हें सुख हो, वही अच्छा है।

केवल "हूँ!" कहकर कुञ्ज कुछ देर गुमसुम बैठा रहा। इसके बाद बोला—तुझे तो मैं हमेशा से जानता हूँ। एक बार तेरे मुँह से 'नहीं' निकल जाने पर किसकी ताक़त है कि वह फिर तुझसे "हाँ" करा ले। तू किसी की बात न सुनेगी मगर तेरी बात सबको सुननी ही पड़ेगी।

कुसुम चुप रही।

कुञ्ज कहने लगा—और सच तो यह है कि इसमें वृन्दावन का भी कुछ वैसा दोष नहीं। तू तो किसी तरह ससुराल जायगी ही नहीं, फिर उनकी गिरिस्ती का काम-धन्धा किस तरह चले? माना कि इस समय उसकी माँ ज़िन्दा हैं, लेकिन वे हमेशा तो बनी ही नहीं रहेंगी।

कुसुम फिर भी कुछ नहीं बोली।

कुञ्ज चण भर चुप रहकर एकाएक कह उठा—अच्छा कुसुम, वह फिर व्याह करे या न करे, तू इतना रोती क्यों है?

इसका और क्या जवाब था?

अन्धकार में कुञ्ज ने नहीं देख पाया, कुसुम के आँसू कम हो आये थे, इस प्रश्न से वे फिर प्रबल वेग से बह चले।

कुब्ज के उठकर चले जाने पर कुसुम उस दिन की बातें याद करके लज्जा और धिक्कार के मारे मन ही मन जैसे मरी जा रही थी। छी-छी, मर जाने से भी तो इस लज्जा के हाथ से छुटकारे की राह नहीं है। आश्रय देने के लिए मैंने उनसे कितनी प्रार्थना—कितनी ख़ुशामद—की थी, फिर भी उन्होंने यही कहा कि मैं तुमको आश्रय देने में असमर्थ हूँ। ऐसा कहने का यही कारण था। अब समझ में आया! उधर जब नये सिरे से फिर ब्याह करने का उद्योग हो रहा था तब बिना जाने आप से मुँह फोड़कर अपने को उस घर की बहू कहकर मैंने गर्व प्रकट किया था। जहाँ उसके लिए बूँद भर भी प्यार नहीं था वहाँ पहाड़ भर प्रेम का अभिमान कर लिया था! भगवन्! तुमने इस असह्य दुःख के ऊपर यह कैसी मर्मभेदी लज्जा का पहाड़ मेरे सिर पर लाद दिया!

कुसुम के हृदय को चीरकर एक लम्बी साँस बाहर निकली। ओह! इसी लिए मेरे स्वभाव और चरित्र के सम्बन्ध में उनको रत्ती भर भी कौतूहल या जानने की इच्छा नहीं है! और मैं निर्लज्ज—यह सब होते हुए—अपनी सफ़ाई देने को, क़सम खाने को तैयार थी।

१०

वृन्दावन उन आदमियों में था, जो किसी हालत में विचलित होकर मिज़ाज गरम करने को अत्यन्त लज्जा की बात समझकर घृणा करते हैं। इस प्रकृति के लोग चाहे जितना क्रोध

हो, उसे सँभाल सकते हैं और किसी कारण से प्रतिपक्षी के क्रोध करने, चीख़ने-चिल्लाने या ऊँचे स्वर से लड़ने-झगड़ने में शरीक होकर—उसके जवाब में वैसा ही करके—लोगों की भीड़ जमा करना नहीं चाहते। तथापि उस दिन कुसुम के बारं-बार निष्ठुर व्यवहार और अन्यान्य अभियोगों से उत्तेजित और क्रुद्ध होकर कुछ निरर्थक और मन में लगनेवाली बातें कह आने के कारण वृन्दावन के मन में बेहद पछतावा और खेद हो रहा था। इसी से दूसरे दिन सवेरे ही चरन को ले आने के बहाने एक दासी, नौकर और गाड़ी भेजकर उसने वास्तव में यह आशा की थी कि बुद्धिमती कुसुम इस इशारे को समझ लेगी और चरन के साथ ही चली भी आवेगी। "अगर वह सचमुच चली आई तो एक दिन के लिए भी उसका क्या प्रबन्ध होगा" इस दुरूह जटिल प्रश्न की मीमांसा उसने यह कर रक्खी थी कि "अगर वह आई तो माँ मौजूद हैं, वे सब सँभाल लेंगी।" माता की कार्यकुशलता पर उसे अगाध विश्वास था। चाहे जितना बड़ा असमञ्जस हो, जटिल समस्या का सङ्कट हो, वे किसी न किसी उपाय से ऐसा प्रबन्ध अवश्य कर लेंगी जिसमें कोई बात न बिगड़ने पावेगी और मङ्गल ही होगा। इसी विश्वास के बल पर माँ से इस बारे में कुछ कहे-सुने बिना ही वृन्दावन ने गाड़ी भेज दी थी, और आशा, आनन्द, लज्जा एवं भय से अधीर होकर वह राह देख रहा था। उसे ख़याल था कि कम से कम

माँ से अपना अपराध क्षमा कराने के लिए वह आज आवेगी अवश्य।

दोपहर के समय अकेले चरन को लेकर गाड़ी लौट आई। वृन्दावन चण्डीमण्डप में बैठा कनखियों से यह देखकर सन्नाटे में आ गया।

कुछ दिन से उसकी पाठशाला में विशृङ्खला दिखाई पड़ रही थी। पण्डितजी (वृन्दावन) के बिलकुल ही मन न लगाने से अनेक पढ़नेवाले लड़के ग़ैरहाज़िर रहने लगे थे। जो आते थे, वे भी तालाब में ताड़ के पत्ते (बङ्गाल में तख़्ती की जगह ताड़ के पत्तों पर ही पहले लड़के लिखते थे) धो लाने में ही सारा दिन लगा देते थे। केवल आरती के अन्त में ठाकुरजी का प्रसाद लेने में लड़कों की उपस्थिति की शृङ्खला बनी हुई थी। सो कदाचित् इसमें उनकी अकृत्रिम भक्ति ही इसका कारण थी—लड़के इस समय अनुपस्थित रहकर ठाकुरजी का अपमान करना पसन्द नहीं करते थे।

इसी अवसर पर एक दिन अकस्मात् वृन्दावन का ध्यान पूर्णरूप से पाठशाला की ओर आकृष्ट हो गया। उसने पढ़नेवाले लड़कों का ताड़ के पत्ते धो लाने का समय छः घण्टे से घटाकर केवल १५ मिनट कर दिया। उसकी इधर भी तीक्ष्ण दृष्टि देखी गई कि दिन भर ग़ायब रहने के बाद केवल आरती के समय ठाकुरजी के प्रेम से आकृष्ट होकर लड़के टीड़ो-दल की तरह मन्दिर की दालान में भर न जाने पावें।

इस तरह लगभग दस दिन हुए थे कि एक दिन तीसरे पहर वृन्दावन के आगे लड़के क़तार बाँधे खड़े ऊँचे स्वर से पहाड़े पढ़ रहे थे। इसी समय एक भले आदमी वहाँ आये। उन्हें देखकर वृन्दावन आसन से उठ खड़ा हुआ, और आदर के साथ बैठने को आसन देकर वह उन भद्र पुरुष की ओर ताकने लगा। उसने उन्हें पहचान नहीं पाया था।

आनेवाले सज्जन की अवस्था वृन्दावन की इतनी ही होगी। उन्होंने आसन पर बैठकर हँसकर कहा—क्यों भई, पहचाना नहीं?

वृन्दावन ने सलज्ज भाव से स्वीकार करके कहा—जी नहीं।

उन्होंने कहा—मैं एक काम से आया हूँ, वह पीछे बताऊँगा। मामा की चिट्ठी में तुम्हारी बहुत तारीफ़ पढ़कर मैंने सोचा कि परदेश जाने के पहले तुमसे मिल लूँ, इसी लिए आया हूँ। मेरा नाम केशव है।

नाम सुनते ही वृन्दावन उछल पड़ा। उसने अपने इस लड़कपन के मित्र को छाती से लगा लिया। यह उसके भूतपूर्व अँगरेज़ी के शिक्षक दुर्गादास बाबू के भानजे थे। पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले इस गाँव में ५-६ महीने रहे थे और उसी समय इन दोनों में बहुत अधिक मित्रता हो गई थी। दुर्गादास बाबू की स्त्री के मरने पर केशव चले गये थे। उसी समय से दोनों मित्रों की फिर भेट नहीं हुई। तथापि दोनों दोनों को नहीं भूले थे। वृन्दावन अपने शिक्षक के मुँह से बराबर इस बाल्य-बन्धु की ख़बर पाया करता था।

केशव एम० ए० पास करके ५-६ वर्ष से कालेज में पढ़ाने का काम कर रहा था। इस समय सरकारी नौकरी पाकर विदेश जा रहा है।

कुशल-प्रश्न हो चुकने पर केशव ने कहा—मेरे मामाजी, झूठ कहने की कौन कहे, कभी किसी बात को बढ़ाकर भी नहीं कहते। गत रविवार को उनकी जो चिट्ठी मिली उसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने अपने जीवन में अनेक छात्रों को पढ़ाया है, लेकिन तुम्हारे सिवा और कोई यथार्थ मनुष्य हुआ या नहीं, यह उन्हें मालूम नहीं। 'यथार्थ मनुष्य' मैंने कभी आँख से नहीं देखा भाई, इसी से देश छोड़कर जाने के पहले तुमको देखने आया हूँ।

मित्र के मुँह से अपनी प्रशंसा की ये बातें निकलने पर भी वृन्दावन को इतनी लज्जा मालूम पड़ी कि उसे इसके जवाब में क्या कहना चाहिए, यह भी न समझ पड़ा। उसे स्वप्न में भी यह ख़याल न था कि संसार में कोई मनुष्य उसके सम्बन्ध में इतनी अधिक प्रशंसा के शब्द कह सकता है। ख़ास कर यह स्तुति उसी के परमपूजनीय शिक्षक के मुँह से पहले-पहल प्रचारित होने के समाचार ने उसे सचमुच किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया।

केशव यह समझ गया। उसने कहा—जाने दो, जिसमें तुम लज्जित होते हो, वह अब फिर मैं नहीं कहूँगा। केवल अपने मामा की राय तुमको बतला दी। अब काम

की बात होनी चाहिए। तुमने यह पाठशाला खोल रक्खी है। सुनता हूँ, तुम लड़कों से फ़ीस या किसी तरह का महीना नहीं लेते; बल्कि असमर्थ लड़कों को किताबें और कपड़े-लत्ते तक अपने पास से देते हो। ऐसा करने को तो मैं भी राज़ी था, लेकिन पढ़नेवाले लड़के नहीं जमा कर सका। बतलाओ तो भाई, इतने लड़के तुमने किस तरकीब से इकट्ठा कर लिये ?

वृन्दावन की समझ में केशव की बात न आई। वह विस्मयपूर्ण दृष्टि से मित्र के चेहरे की ओर ताकता रहा।

केशव ने हँसकर कहा—सुनो, ख़ुलासा करके सब हाल कहता हूँ, नहीं तो तुम्हारी समझ में कुछ न आवेगा। आजकल हम सब पढ़े-लिखे लोगों की समझ में यह बात आ गई है कि अगर वास्तव में देश को लाभ पहुँचानेवाला कोई काम हो सकता है तो वह है साधारण ग़रीब अपढ़ लोगों के लड़कों को शिक्षा देना। शिक्षा का प्रचार किये बिना देश की उन्नत के लिए चाहे जो काम करो, वृथा होगा। उसमें किया गया काम बेकार होगा। कम से कम मेरा तो यही मत है कि सर्वसाधारण के लड़कों को लिखना-पढ़ना सिखाकर शिक्षित बना दो, फिर वे अपनी फ़िक्र आप कर लेंगे। एंजिन में स्टीम होने पर ही गाड़ी चलती है, नहीं तो इतने बड़े जड़ पदार्थ को कुछ शिक्षित भले आदमी मिल-कर अपने शरीर के ज़ोर से चाहे जितना ठेलें, वह ज़रा सा भी हिल नहीं सकता। यही हाल देश के अशिक्षित समाज

का है। ख़ैर, तुमसे यह सब बतलाने की ज़रूरत नहीं। तुम ख़ुद ही अच्छी तरह इन बातों को जानते हो, नहीं तो अपनी गाँठ के पैसे ख़र्च करके यह पाठशाला न खोलते। मैंने तो इसी के लिए, इसी कार्य में अपना सारा जीवन लगाने के विचार से, ब्याह तक नहीं किया जी। तुम्हारे गाँव की ही तरह हमारे गाँव में भी लिखना-पढ़ना सिखलाने का कोई ज़रिया नहीं है। इसी से पहले एक पाठशाला खोलकर पीछे एक बड़े और अच्छे स्कूल के रूप में बदल देने का विचार मैंने किया था। मगर मेरी साधारण पाठशाला ही नहीं चली, लड़के ही नहीं जुड़े! मेरे गाँव के छोटी जातियों के लोग ऐसे शैतान हैं कि अपने लड़कों को पढ़ाने-लिखाने के लिए किसी तरह राज़ी ही नहीं होते। अपनी इज़्ज़त और शान भूलकर कुछ दिन तक नीच जातियों के दरवाज़े जा-जाकर उन्हें समझाया, पाठशाला में पढ़ने के लिए लड़के भेजने को उनसे कहा, लेकिन कुछ फल न हुआ—किसी तरह कोई इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

बातें सुनकर वृन्दावन का चेहरा लाल हो उठा। किन्तु उसने शान्त भाव से ही कहा—उन नीच जातियों की तक़दीर अच्छी थी, जो उन्होंने तुम सरीखे भद्रपुरुष की पाठशाला में अपने लड़के नहीं भेजे। भाई, मैं तो यही कहूँगा कि मुझ जैसे छोटी जाति के लोगों के दरवाज़े पर जाकर, घर-घर घूमकर, अपनी इज़्ज़त और शान में बट्टा लगाकर तुमने उचित कार्य नहीं किया।

वृन्दावन की इस उक्ति में जो व्यङ्ग और ताना था वह केशव के हृदय में अच्छी तरह चुभ गया। उसने अत्यन्त अप्रतिभ होकर कहा—नहीं जी, नहीं,—तुमको—तुम जैसे लोगों को नीच कौन कहता है? यह तुम क्या कहते हो? छी-छी! मैंने यह नहीं कहा, मेरा मतलब यह नहीं था—जानते हो—

केशव की घबराहट देख और असम्बद्ध उक्ति सुनकर वृन्दावन हँस उठा। उसने कहा—तुमने मुझको नहीं कहा, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन मुझे नहीं, मेरे आत्मीय स्वजनों को तो कहा। जुलाहा, बढ़ई, अहीर वग़ैरह किसान सब एक समान हैं। हम कपड़े बुनते हैं, हल चलाते हैं, गोरू चराते और खेती करते हैं। कोट-कमीज़ पहनने को नहीं पाते, सरकारी दफ़्तरों के दरवाज़े तक हमारी पहुँच नहीं। इसी लिए तुम पढ़े-लिखे भद्रपुरुष हमें छोटी जाति, नीच आदि कहते हो। अच्छे काम से भी हम लोगों के घर में पैर रखने से तुम्हारे समान उच्चशिक्षित उदार लोगों के भी सम्मान और शान पर पानी फिर जाता है।

केशव ने सिर नीचा करके कहा—वृन्दावन, सच कहता हूँ भाई, मैंने तुमको ऐसे किसान और मज़दूरी-पेशा लोगों के दल से अलग समझ करके ही ऐसी बात कह डाली। अगर मैं जानता कि तुम अपने को भी इन लोगों के दल में शामिल

करके नाराज़ हो जाओगे तो कभी ऐसी बात अपने मुँह से न निकालता।

वृन्दावन ने कहा—यह भी मैं जानता हूँ। लेकिन तुम्हारे अलग कर देने से ही तो मैं इन लोगों के दल से अलग नहीं हो सकता भाई। मेरी सात पीढ़ियाँ इस देश के इन छोटी जातिवालों के साथ ही मिली हुई हैं! मैं ख़ुद भी किसान ही हूँ—मैं अपने ही हाथ से किसानी के सब काम करता हूँ। केशव, इसी लिए तुम्हारी पाठशाला में पढ़नेवाले लड़कों की कमी बनी रही और मेरी पाठशाला में लड़के भरे पड़े हैं। मैं इसी दल में रहने से बड़ा हूँ, इसी से वे बिना किसी सङ्कोच के मेरे पास आ गये और तुम्हारे पास जाने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ी। हम लोग अशिक्षित और ग़रीब हैं; हम अपना अभिमान मुँह से प्रकट नहीं कर सकते। तुम लोग छोटी जाति कहा करते हो, हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन हमारा अन्तर्यामी—हमारी आत्मा उसे नहीं स्वीकार करती, और इसी से वह तुम्हारी अच्छी बात को भी नहीं सुनती।

केशव लज्जा और क्षोभ के साथ सिर झुकाये सब सुन रहे थे।

वृन्दावन ने कहा—हम जानते हैं, इससे हम लोगों की ही भारी हानि होती है, तो भी हम लोग तुम्हें अपना और शुभ चाहनेवाला मानने में डरते हैं। देखते नहीं हो भाई, हम लोगों में अताई वैद्य और अताई पण्डित ही

फ़ुरते हैं—जैसे मैं--किन्तु तुम जैसे बड़े-बड़े डाक्टरों और प्रोफ़ेसरों की भी बात नहीं सुनी जाती, पूछ नहीं होती। हम लोगों के हृदय में देवता का निवास है, तुम लोगों की यह अश्रद्धासूचक करुणा, यह ऊँचे पर बैठकर नीचे पदवालों को भिक्षा देना उनको चोट पहुँचाता है; वे मुँह फेर लेते हैं।

अब की केशव ने प्रतिवाद करके कहा—मगर मुँह फेर लेना अन्याय है। हम लोग दरअसल तुम लोगों से नफ़रत नहीं करते, सचमुच भला चाहते हैं। तुम लोगों को हम लोगों पर सोलहों आने विश्वास करना चाहिए। हम लोगों ने शिक्षा पाई है, इसलिए हम तुम्हारी अपेक्षा अधिक समझते हैं कि काहे में तुम्हारा भला होगा और काहे में नहीं। तुम लोग भी आँखों से देख रहे हो कि हम लोग सभी बातों में उन्नत हैं। इसलिए हमारी बात सुनना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

वृन्दावन ने कहा—देखो केशव, हमारे हृदय के देवता क्यों मुँह फेर लेते हैं यह तो वही जानें; इस बात को जाने दो; लेकिन मैं यह अवश्य कहूँगा कि तुम लोग आत्मीय की तरह हमारे कल्याण की कामना नहीं करते,—मालिक की तरह हुकूमत जताकर करते हो। इसी से तुम लोगों में से पन्द्रह आने भर लोगों के मन का भाव यही होता है कि भले आदमियों के—उच्च जाति के—लड़कों का भला हो, और किसानों तथा मज़दूरों के लड़कों का अधःपतन। तुम लोगों के संसर्ग में लिखना-पढ़ना सीखने से किसानों के लड़के बाबू बन जाते

हैं; तब वे अपढ़ बाप-दादे और बड़े-बूढे आदि किसी को कुछ नहीं समझते, उन्हें सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते। यह तुम लोगों के ही आचरण का अनुकरण होता है। विद्या पढ़ने के इस अन्तिम शोचनीय परिणाम की आशङ्का करना हम, तुम लोगों के आचरण देखकर ही, सीखते हैं! भाई केशव, पहले हम लोगों के अर्थात् देश के इन छोटे लोगों के आत्मीय बनो, उसके बाद उनके मङ्गल की कामना करो, उनके लड़के-वालों को लिखना-पढ़ना सिखाने जाओ। पहले अपना आचार-व्यवहार अच्छा और आदर्श बनाकर दिखाओ; यह प्रमाणित करो कि तुम पढ़े-लिखे भद्र पुरुष अपढ़ किसानों से एकदम अलग कोई स्वतन्त्रदल के नहीं हो; लिखना-पढ़ना सीखकर भी तुम लोग अपढ़ अशिक्षित किसानों को बिलकुल छोटी जाति का आदमी नहीं समझते, वल्कि श्रद्धा करते हो; ऐसा होने पर ही हम लोगों का यह भय दूर होगा कि हमारे भी लड़के लिख-पढ़कर हमारे प्रति अश्रद्धा का भाव न दिखावेंगे, समाज छोड़कर, अपनी जाति के पुराने पेशे और रोज़गार को छोड़कर अपनी मण्डली से अलग होने के लिए उन्मुख और उद्यत न हो उठेंगे। जब तक तुम यह नहीं करते भाई, तब तक चाहे हज़ार जन्म तक क्वारे रहकर अपना जीवन इस काम के लिए क्यों न अर्पण कर दो, तुम्हारी पाठशाला में छोटी जाति के लड़के कभी न पढ़ने जायँगे। छोटी जाति के लोग शिक्षित भले आदमियों को डरेंगे, उनका सम्मान करेंगे, शायद भक्ति भी करें लेकिन

विश्वास नहीं करेंगे, उनकी बात नहीं सुनेंगे। तब तक उनके मन से यह संशय दूर न होगा कि तुम्हारी भलाई और उनकी भलाई एक चीज़ है या नहीं।

केशव ने दम भर चुप रहकर कहा—जान पड़ता है, तुम्हारा ही कहना सच है वृन्दावन। किन्तु मैं पूछता हूँ कि अगर दोनों दलों में परस्पर विश्वास का बन्धन ही न रहा तो हम लोगों के आत्मीयता जताने के सैकड़ों प्रयास भी कुछ न कर सकेंगे। अगर कोई विश्वास ही न करे तो हम किस तरह यह समझा सकेंगे कि हम उसके अपने हैं या ग़ैर? इसका उपाय क्या है?

वृन्दावन ने कहा—अभी मैं क्या कह चुका हूँ कि तुम अपने आचार-व्यवहार से इसका विश्वास करा सकते हो। हम लोगों के सभी संस्कारों को अगर तुम शिक्षितों का दल कुसंस्कार कहकर त्याज्य समझता रहेगा; हमारा निवास-स्थान, हमारा सांसारिक चाल-चलन और रहन-सहन, हमारा धन्धा-रोज़गार आदि सब बातें अगर सर्वथा तुम्हारे निवास-स्थान आदि से दूर और अलग रहेंगी, तो हम लोग कभी यह न समझ सकेंगे कि तुम हमें जो कल्याण की राह बतलाते हो उसमें सचमुच हमारा कल्याण ही होगा। अच्छा केशव, जब से तुम्हारा जनेऊ हुआ तब से क्या तुम बराबर सन्ध्या, गायत्री का जप आदि नित्य करते रहते हो?

केशव—नहीं।

वृन्दावन—जूते पहने पानी पीते हो ?

केशव—हाँ।

वृन्दावन—और मुसलमान का पकाया हुआ खाना खाते हो ?

केशव—कुछ ऐतराज़ नहीं, खा सकता हूँ।

वृन्दावन—तब तो मैं भी कह सकता हूँ कि छोटी जाति के लोगों के बीच पाठशाला खोलकर उनके लड़कों को शिक्षा देने का इरादा करना तुम्हारी विडम्बना मात्र है, अथवा और भी कुछ अधिक है। उसे कहने से तुम नाराज़ हो जाओगे।

केशव—मेरी ढिठाई है, क्यों न ?

वृन्दावन—हाँ, ठीक वही। केशव, केवल इच्छा और सहृदयता रहने से ही पराई भलाई अथवा देश का कार्य नहीं किया जा सकता। जिनकी भलाई करनी है उनके साथ रहने को, कष्ट सहने की, शक्ति होनी चाहिए। बुद्धि-विवेचना और धर्म-कर्म के विचारों में इतना आगे बढ़ जाने से वे भी तुम्हारे पास तक न पहुँच सकेंगे, और तुम भी उनका पता न पाओगे। लेकिन—अब शाम होने को है, यह चर्चा बन्द करनी चाहिए, मुझे अभी पाठशाला का काम करना है।

"अच्छा, पाठशाला का काम करो। मैं कल सवेरे फिर आऊँगा।" इतना कहकर केशव उठ खड़े हुए। वृन्दावन ने पृथ्वी पर सिर रखकर उनको प्रणाम किया, और उनके पैरों की धूल लेकर अपने माथे में लगा ली।

देहाती होने पर भी केशव शहरुए हो गये थे। मित्र से ऐसा व्यवहार पाकर उन्हें मन-ही-मन बड़ा संकोच हुआ। दोनों जैसे आँगन में पहुँचे वैसे ही पढ़नेवाले लड़कों ने पृथ्वी पर माथा टेककर केशव को प्रणाम किया।

अपने बाल्य-बन्धु को दरवाज़े तक पहुँचाकर वृन्दावन ने धीरे-धीरे कहा—भाई, तुम मित्र होने पर भी ब्राह्मण हो। इसी से तुमको अपनी ओर से भी प्रणाम करता हूँ। लड़कों की ओर से तो पहले ही कर चुका हूँ। समझ गये न?

लज्जामिश्रित हास्य के साथ "समझ गया" कहकर केशव ने धीरे-धीरे वहाँ से प्रस्थान किया।

दूसरे दिन तड़के ही हाज़िर होकर केशव ने कहा—वृन्दावन, तुम सचमुच 'यथार्थ मनुष्य' हो, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

वृन्दावन ने हँसकर कहा—मुझे भी सन्देह नहीं है। और कहो?

केशव ने कहा—मैं तुमको उपदेश नहीं देता; इसका मेरा अहङ्कार कल दूर हो गया—मैं केवल मित्र की तरह विनयपूर्वक तुमसे पूछता हूँ कि तुम इस गाँव में तो भला अपना धन और समय लगाकर लड़कों को पढ़ाते-लिखाते हो; किन्तु और भी तो कितने ही सैकड़ों-हज़ारों गाँव देश में ऐसे पड़े हैं जहाँ किसानों के बाल-बच्चों को "क, ख" सिखाने तक का कोई प्रबन्ध नहीं है। उनके लिए क्या उपाय होना चाहिए? अच्छा, क्या यह सरकार का कर्तव्य नहीं है?

वृन्दावन हँसने लगा। उसने कहा—तुम्हारा यह प्रश्न ठीक इन पढ़नेवाले लड़कों का जैसा है। किसी अपराध के लिए राधे को मारने जाओ तो वह फ़ौरन दोनों हाथ उठाकर कह उठेगा कि पण्डितजी, माधो ने भी यही काम किया है। इसका अर्थ यही हुआ कि माधो का दोष दिखा देने से राधे का दोष मिट गया। इस देशव्यापी मूढ़ता का प्रायश्चित्त हम ख़ुद तो पहले यथाशक्ति करें भाई, उसके बाद देखा जायगा कि सरकार अपने कर्तव्य का पालन करती है या नहीं। अपने कर्तव्य का पालन करने के पहले उसके बदले पराये कर्तव्य की आलोचना करने से पाप होता है।

केशव ने कहा—मगर हमारी या तुम्हारी शक्ति ही कितनी है? एक छोटी सी पाठशाला खोलकर उसमें दस-पचीस छात्रों को पढ़ाने से कितना प्रायश्चित्त होगा?

वृन्दावन ने विस्मय के साथ दम भर केशव की ओर ताकते रहकर कहा—यह तुम्हारा कथन ठीक नहीं है भाई। मेरी पाठशाला का एक लड़का भी अगर पढ़-लिखकर 'यथार्थ मनुष्य' बन जाय तो उसी से इन तीस-बत्तीस करोड़ देशवासियों का उद्धार हो सकता है। न्यूटन, फ़ेराडे, राममोहन राय या विद्यासागर सरीखे मनुष्य सैकड़ों-हज़ारों की संख्या में नहीं तैयार होते केशव! बल्कि तुम आशीर्वाद करो कि इस अत्यन्त छोटी पाठशाला में मैं एक लड़के को भी 'यथार्थ मनुष्य' बनकर निकलते देखकर मर सकूँ। एक बात और है। मेरी

पाठशाला में पढ़ने की एक शर्त है। कल अगर सन्ध्या के बाद तुम उपस्थित रहते तो देखते कि नित्य, घर जाने के पहले, हर एक बालक यह प्रतिज्ञा करता है कि बड़ा होने पर वह कम से कम दो-एक लड़कों को अवश्य ही पढ़ावे-लिखावेगा। मेरे प्रत्येक पाँच विद्यार्थियों में से अगर एक विद्यार्थी भी बड़ा होने पर अपने बाल्य-काल की इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करेगा तो मैंने हिसाब लगाकर देखा है केशव, बीस वर्ष के बाद इस बङ्गाल में एक मनुष्य भी मूर्ख न रह जायगा।

केशव ने एक साँस छोड़कर कहा—कैसी कठिन दुराशा है!

वृन्दावन ने कहा—हाँ, यह कह सकते हो। दुर्बल विचार की घड़ी में मुझे भी डर लगता है कि यह मेरी दुराशा है; किन्तु सबल विचार के समय जान पड़ता है, भगवान् यदि कृपा-दृष्टि करें तो इसके पूर्ण होने में कितनी देर लगेगी!

केशव ने कहा—वृन्दावन, मैं आज रात को ही यहाँ से चल दूँगा। भगवान् ही जानें, अब कब भेंट होगी। चिट्ठी लिखने से जवाब तो दोगे न, बोलो?

वृन्दावन—यह कौन-सी बड़ी बात है केशव?

केशव—बड़ी बात भी कहता हूँ, सुनो। अगर कभी मित्र की आवश्यकता आ पड़े तो मुझे स्मरण करना। बोलो, करोगे?

"वह भी करूँगा।" यह कहकर वृन्दावन ने झुककर केशव को प्रणाम किया, और उनके पैरों की रज लेकर अपने माथे में लगाली।

११

ठाकुरजी के हिंडोले का उत्सव वृन्दावन की माता हर-साल धूमधाम के साथ किया करती थीं। कल वह उत्सव हो गया था। बहुत थक जाने के कारण आज वृन्दावन सवेरे सोकर उठा न था। माता ने दरवाज़े से ही पुकारकर कहा—वृन्दावन, तनिक उठो तो बेटा।

माता का व्याकुल कण्ठ-स्वर कान में पहुँचते ही वृन्दावन अकचकाकर चटपट उठ बैठा। उसने उठते ही पूछा—क्यों माँ, क्या है?

माता ने किवाड़े खोलकर भीतर पहुँचकर कहा—मैं तो पहचानती नहीं भैया, तेरी पाठशाला का एक लड़का बाहर बैठा बहुत रो रहा है। उसके बाप की तबियत बहुत ख़राब है; क़य और दस्त हो रहे हैं; और उसके बिस्तर से उठने की भी ताक़त नहीं।

वृन्दावन जैसे तेज़ी के साथ झपटकर बाहर पहुँचा वैसे ही शिवनाथ ग्वाले का लड़का रोकर बोला—पण्डितजी, बप्पा आँखें बन्द किये पड़े हैं। न आँखें खोलकर देखते हैं, न कुछ बोलते-चालते हैं।

वृन्दावन स्नेहपूर्ण भाव से उसके आँसू पोंछकर, उसका हाथ पकड़कर, उसके घर पहुँच गया।

उस समय शिवनाथ की चलाचली की तैयारी थी। उसके मरने में अधिक देर न थी। देहात में हर साल इन्हीं दिनों

हैज़े का आगमन होता है। इस साल उसका यही पहला हमला था। कल शाम ही को शिवनाथ पर रोग का आक्रमण हुआ था। तब से अब तक बिना चिकित्सा के पड़ा हुआ वह रोग से युद्ध करता रहा। वृन्दावन के पहुँचने के घण्टे भर बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

बङ्गाल के हर एक गाँव में ऐसे दो-एक स्वयम्भू डाक्टर या वैद्य रहते हैं जिन्होंने कहीं डाक्टरी या वैद्यक की शिक्षा नहीं प्राप्त की। वे अपने आप डाक्टर या वैद्य बन बैठे हैं। इस गाँव में भी उसी श्रेणी के एक गोपाल डाक्टर थे। कल रात को वे बुलाये गये थे। हैज़े का नाम सुनकर उन्होंने दो रुपये नक़द फ़ीस के पहले तलब किये। क्योंकि अपनी बहुत दिनों की अभिज्ञता से वे बखूबी जानते थे कि उधार कारबार करने से ऐसे घातक रोग वाले छोटी जाति के रोगी उनकी दवा खाकर दूसरे दिन फ़ीस के रुपये चुकाने से जान बचाने के लिए ऐसी जगह चले जाते हैं, जहाँ से रुपये वसूल होने की कोई आशा नहीं रहती। शिवनाथ की स्त्री इतनी रात को नक़द दो रुपये का इन्तज़ाम न कर सकी। लाचार होकर केवल नमक का पानी पिलाकर उसने पति की शेष चिकित्सा की, और बेचारी रात भर सिरहाने बैठी रहकर देवी मैया से आराम कर देने के लिए प्रार्थना करती रही।

वृन्दावन रुपये-पैसे वाला बड़ा आदमी समझा जाता था। इस गाँव के सभी आदमी उसको मानते, उसकी इज़्ज़त करते

थे। तत्काल विधवा हुई शिवनाथ की स्त्री, पति के क्रिया-कर्म में सहायता की प्रार्थना करती हुई, वृन्दावन के पैरों पर गिर कर रोने लगी। शिवनाथ की पूँजी थी उसके निराहार और आधा पेट आहार के कारण दुर्बल हो रहे दोनों हाथ, और दो गायें। उन्हीं में से एक गाय गिरों रखकर इस विपत्ति से उबारने की प्रार्थना वह अभागी असहाय अवला कर रही थी।

कोई चीज़ गिरों न रखकर भी वृन्दावन अपने जीवन में ऐसे अनेक असमर्थ ग़रीबों का उद्धार कर चुका था। शिवनाथ का भी क्रिया-कर्म कराकर वह तीसरे पहर घर पहुँचा।

शाम हो गई थी। उस समय भी वृन्दावन चण्डीमण्डप के बरामदे में चटाई बिछाकर उस पर आँखें मूँदे लेटा हुआ था। अकस्मात् पैरों की आहट पाकर आँख उठाकर उसने देखा, वही शिवनाथ का लड़का फिर आया है।

"आ, बैठ षष्ठीचरण" कहकर वृन्दावन उठ बैठा।

लड़का दो बार अस्पष्ट स्वर में "पण्डितजी, पण्डितजी" कहकर ही रो उठा।

हाथ पकड़कर पास बिठाते ही ताज़े पितृशोक से पीड़ित बालक ने रोते-रोते कहा—कृष्णा भी क़य कर रहा है।

कृष्णा उसका छोटा भाई है। उसी के साथ पाठशाला में वह भी पढ़ता है।

आज रात को गोपाल डाक्टर फ़ीस के रुपये लिये बिना ही वृन्दावन के साथ कृष्णा को देखने पहुँचे। रोगी की नाड़ी

देखी, जीभ देखी, दवा दी, किन्तु कृष्णा की रक्षा वे किसी तरह न कर सके। हठीले कृष्णा ने माता के कलेजा दहलानेवाले करुण विलाप और डाक्टर की इज़्ज़त का कुछ भी ख़याल न किया। सवेरा भी न होने पाया, वह गोपाल डाक्टर के जग-जाहिर हाथ के यश को कलङ्कित करके अपने बाप के पास चला गया।

बेटे की लाश को गोद में लिये हुए तुरन्त की विधवा हुई माता का बिलख-बिलखकर रोना सुनकर वृन्दावन का हृदय विदीर्ण होने लगा। उसके भी लड़का है। उससे विधवा का विलाप न सुना गया। वहाँ से भागकर वह अपने घर आया, और चरन को प्राणपण से छाती से चिमटाकर रोने लगा। अपने हृदय की ओर देखकर उसने मन ही मन हज़ारों बार यही कहा—भगवन्, मनुष्य को उसके पाप अथवा अपराध का दण्ड और चाहे जो देना, केवल यही दण्ड न देना। नहीं जानते, उसकी यह प्रार्थना जगदीश्वर के कानों तक पहुँची या नहीं, किन्तु उसने यह विना किसी संशय के अनुभव किया कि यह पुत्र-शोक का आघात सहने की शक्ति और चाहे जिसमें हो, उसमें बिलकुल नहीं है।

इसके बाद दो दिन निर्विघ्न बीते, किन्तु तीसरे दिन सुन पड़ा कि वृन्दावन के परोसी रसिक हलवाई की स्त्री को हैज़ा हो गया है, और उसके मरने में अधिक विलम्ब नहीं है।

वृन्दावन की माँ रोगिणी को देखने गई थीं। दस बजे आँसू पोछती लौटीं। घण्टे भर के बाद ही घोर विलाप का

कोलाहल सुन पड़ा, जिससे मालूम हो गया कि रसिक की स्त्री छोटे-छोटे चार-पाँच बच्चे-बच्चे छोड़कर स्वर्ग सिधार गई।

अब तो गाँव भर में महामारी फैल गई। जिसके भागकर जाने का ठिकाना था वह वहाँ भाग गया। किन्तु अधिकांश मनुष्यों के लिए कहीं ठिकाना न था। डर के मारे उनके मुख सूख रहे थे, तथापि किसी तरह साहस-सञ्चय करके, कलेजा कड़ा करके वे कहते थे—"जब ज़िन्दगी के दिन पूरे हो जाँयगे तब जाना ही पड़ेगा, कोई कहीं भागकर बच न सकेगा। भागकर क्या करें!" पर यह निश्चय था कि अगर कहीं ठिकाना होता तो उनमें से कोई घड़ी भर भी गाँव में न टिकता।

वृन्दावन के घर के सामने ही गाँव की सदर सड़क थी। मुर्दे उधर ही से मसान को पहुँचाये जाते थे। जब-तब हरि बोल* की भयङ्कर ध्वनि सुन पड़ती थी। वृन्दावन लगातार देखा करता था कि ग्रामवासियों में से अधिकांश की ज़िन्दगी के दिन तेज़ी के साथ पूरे होते जा रहे हैं।

आस-पास के और गाँवों में भी दो-एक मौत होने की ख़बर सुन पड़ने लगी। किन्तु बाड़ल ग्राम (वृन्दावन के गाँव) की दशा घड़ी-घड़ी पर भयानक से भी भयानक होती जा रही थी। इसका प्रधान कारण यह था कि और-और बातों में

---

* बङ्गाल में मुर्दे ले जानेवाले 'रामनाम सत्य है' की जगह 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते जाते हैं।

उक्त गाँव की हालत अच्छी होने पर भी वहाँ पीने के पानी का कुछ भी प्रबन्ध न था।

नदी तो थी नहीं, जो दो-चार तालाब* पहले अच्छी हालत में थे वे भी सफ़ाई न होने के कारण पटते जा रहे थे। उनमें जो कुछ पानी रह गया था वह गन्दा हो रहा था। उनका पानी पीने लायक़ न रह गया था; मगर किसी को इसका ख़याल तक न था। गाँववालों में से अधिकांश लोगों का यही विश्वास था कि जब तक जल से प्यास बुझ सके और भोजन पकाया जा सके तब तक यह सोचने की कोई आवश्यकता नहीं कि पानी अच्छा है या गन्दा—उससे हानि पहुँचेगी या लाभ।

इधर गोपाल डाक्टर के सिवा दूसरा कोई वैद्य या डाक्टर गाँव में न था। डाक्टर साहब को ग़रीब रोगी के घर जाने की फ़ुरसत न मिलती थी। उधर महामारी की बीमारी दिन-दिन दूने वेग से बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे ऐसा हो गया कि दवा-दारू और पथ्य का प्रबन्ध कैसा, मुर्दे जलाना भी मुश्किल हो उठा। मुर्दे को मसान तक उठाकर ले जानेवाले मनुष्य मिलना दूभर था।

केवल वृन्दावन का महल्ला उस समय भी बीमारी से बचा हुआ था। इस महल्ले में एक रसिक की स्त्री तो मरी

---

* बङ्गाल में कुएँ नहीं, पोखर (तालाब) ही होते हैं। उनमें बरसाती पानी ही अधिकतर भरा रहता है। वही पानी नहाने, कपड़े धोने और पीने के काम आता है।—अनुवादक।

थी, उसके सिवा इन पाँच-सात घरों में मृत्यु का प्रवेश नहीं हो पाया था।

वृन्दावन के बाप ने अपने निस्तार के लिए जो तालाब खुदवाया था उसका पानी अब तक दूषित नहीं हुआ था। परोस के लोग इस तालाब के पानी का व्यवहार करने के कारण ही शायद अब तक मौत के मुँह में जाने से बचे हुए थे।

लेकिन वृन्दावन दिन-दिन चिन्ता के मारे सूखता जा रहा था। लड़के के मुँह की ओर देखते ही उसके हृदय का रक्त उछलने लगता था। यही जान पड़ता था कि एक अलक्ष्य अभेद्य दीवार उन दोनों, पिता-पुत्र, के बीच में हर घड़ी ऊँची से ऊँची होती जा रही है। अब उसमें वह पहले का सा साहस नहीं रहा; रोग और मृत्यु की बात सुनते ही वह चौंक उठता है। कोई विपत्ति-ग्रस्त ग्रामवासी अगर सहायता के लिए बुलाने आता है तो वह उसके साथ जाता अवश्य है, लेकिन जैसे कोई अपराधी विचारालय की ओर जाता है वैसे ही कुण्ठित भीत भाव से वह एक एक पग रखता है। केवल उसका चिर-काल का अभ्यास ही जैसे उसे खींचकर घर के बाहर ले जाता है। किसी मुर्दे के साथ मसान जाने पर वहाँ से घर लौटकर चरन को अपने पास बुलाते और उसके अङ्ग को स्पर्श करते समय उसका सारा शरीर काँप उठता है। यही जान पड़ता है कि अज्ञातरूप से शायद किसी संक्रामक रोग

के बीज को वह अपने इस एकमात्र वंश के अंकुर के शरीर में प्रविष्ट करा रहा है। उसे हर घड़ी केवल यही चिन्ता घेरे रहती है कि किस तरह वह अपने लड़के को बाहर के सब तरह के संसर्ग से, रोग से, मरण से अलग रक्खे।

पाठशाला अपने आप बन्द हो गई थी। चरन के मुख की ओर देखकर वृन्दावन को इससे भी कुछ क्लेश नहीं हुआ। कुछ दिनों से चरन को खिलाने, पिलाने, सुलाने वगैरह का सारा प्रबन्ध वृन्दावन स्वयं अपने हाथ से करने लगा था। इस मामले में जैसे उसे अपनी माता पर भी पूर्णरूप से विश्वास या भरोसा करना सन्तोषजनक नहीं प्रतीत होता था। इन्हीं दिनों एक दिन माता के मुँह से वृन्दावन ने सुना कि उसके परोसी तारिणीचरण मुखर्जी का छोटा लड़का बीमार हो गया है। रोग वही हैज़ा था। सुनते ही डर के मारे वृन्दावन का मुँह स्याह पड़ गया। यह देखकर माता ने कहा—बेटा, अब तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं। तुम चरन को लेकर यहाँ से कहीं चले जाओ।

वृन्दावन की आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। उसने माता से कहा—माँ, तुम भी साथ चलो।

माता ने विस्मित होकर कहा—अपने ठाकुरजी को यहीं छोड़कर!

वृन्दावन—पुरोहितजी को ठाकुरजी की पूजा-सेवा करने का काम सौंपकर चलो।

माता ने और भी अधिक अचरज के साथ कहा—यह तुम क्या कह रहे हो बेटा! ठाकुरजी की सेवा-पूजा दूसरे पर छोड़कर मैं भाग जाऊँगी ?

वृन्दावन ने लज्जित होकर कहा—मैं यह नहीं कहता माँ। ठाकुरजी की सेवा-पूजा का भार तुम्हारे ज़िम्मे रहेगा; केवल कुछ दिन के लिए दूसरे पर छोड़ना होगा। दो दिन बाद लौटकर फिर तुम्हीं सेवा-पूजा करना।

माता ने दृढ़ भाव से सिर हिलाकर कहा—यह नहीं होने का वृन्दावन। मेरी सास मुझे यह काम सौंप गई हैं। मैं भी अगर कभी वैसा कर जा सकूँगी तो कर जाऊँगी। मरते दम तक तो यह काम मुझे ही करना होगा। मगर तुम चरन को लेकर गाँव से जल्दी चले जाओ।

वृन्दावन ने उद्वेगपूर्ण मुख से कहा—मैं ऐसे समय में तुमको अकेली छोड़कर किस तरह जा सकता हूँ? मान लो अगर—

माता ने ज़रा मुसकिराकर कहा—मैं तो इसे बहुत अच्छा समय समझती हूँ भैया। अगर ऐसे में मेरी पुकार हुई तो मैं समझूँगी कि मेरा काम समाप्त हो गया; ठाकुरजी अपनी सेवा-पूजा का भार दूसरे को देना चाहते हैं। ऐसा ही हो भैया, मैं तो मनाती हूँ। मेरा आशीर्वाद लेकर तुम दोनों बाप-बेटे बेखटके यहाँ से जाओ; मैं अपने ठाकुरद्वारे में ठाकुरजी की सेवा में आनन्दपूर्वक पड़ी रहूँगी।

माता का अविचलित दृढ़ कण्ठस्वर सुनकर वृन्दावन को अन्यत्र भाग जाने की आशा नहीं रही। थोड़ी देर सोचने के बाद उसने भी दृढ़ स्वर में कहा—तो फिर मेरा भी यहाँ से जाना न होगा। मैं सच कहता हूँ माँ, मुझे अपने लिए रत्ती भर भय की भावना नहीं है, केवल चरन की चिन्ता से मैं विचलित हो उठा हूँ। लेकिन जब जाना किसी तरह हो ही नहीं सकता तब आज से उसे ठाकुरजी के चरणों में सौंपकर निश्चिन्त और निर्भय हो रहूँगा। आज से तुम मेरा मुख सूखा हुआ और भय-विह्वल न देख पाओगी माँ।

तारिणी मुखर्जी का छोटा लड़का मर गया। दूसरे दिन, सवेरे के समय, वृन्दावन किसी काम से उधर गया। उसने देखा, उसके तालाब के घाट पर एक औरत कुछ कपड़े धो रही है। कुछ कपड़े धोये जा चुके हैं, और कुछ धोने को बाक़ी हैं। कपड़े देखते ही वृन्दावन का कलेजा काँप उठा। उसने पास आकर क्रोध के स्वर में कहा—मुर्दे के कपड़े-लत्ते आप इस तालाब में धो रही हैं! आपको कोई विचार नहीं है!

घूँघट के भीतर से उस औरत ने अस्पष्ट स्वर में क्या कहा, कुछ सुन न पड़ा।

वृन्दावन ने कहा—जो कुछ कर चुकीं सो कर चुकीं, अब उठकर चल दीजिए। बाक़ी कपड़े आप इस तालाब में न धोने पायँगी।

वह औरत धुले और बेधुले सब कपड़े उठाकर चली गई।

वृन्दावन कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खड़े-खड़े जल की तरफ़ देखते रहने के बाद सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। इतने में उसने देखा, तारिणी झपटता हुआ उसी ओर आ रहा है। एक तो पुत्र-शोक, उस पर यह अपमान! तारिणी का चेहरा और आँखें पागल की-सी हो रही थीं। उसने वृन्दावन के सामने पड़ते ही कहा—क्यों जी, तुमने मेरे घर की औरत को तालाब में उतरने नहीं दिया?

वृन्दावन ने कहा—यह बात नहीं है। मैंने मैले और ग़मी के गन्दे कपड़े तालाब में धोने के लिए मना किया है।

तारिणी ने चिल्लाकर कहा—तो फिर कपड़े कहाँ धोवें? रहेंगे बाड़ल में और धोने जायँगे बदिग्राटी (एक बड़ी दूर के गाँव) में! मिट जायगा वृन्दावन, मिट जायगा तू। नीच जाति होकर रुपये के ज़ोर से ब्राह्मण को कष्ट देगा तो तेरा वंश-नाश हो जायगा!

वृन्दावन का हृदय धड़क उठा! लेकिन चीख़ना-चिल्लाना और लड़ना-झगड़ना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। इसी से अपने को सँभालकर उसने शान्त भाव से कहा—मैं अकेला मिट जाऊँ तो इसमें उतनी हानि न होगी; मगर आप तो सारी बस्ती को मिटाने की तैयारी कर रहे हैं! यह मैं न होने दूँगा। गाँव भर उजड़ा जा रहा है, सिर्फ़ इधर इतना सा टुकड़ा बचा हुआ है। क्या आप इसको भी बचा रहने न देंगे?

ब्राह्मण ने बिगड़कर उद्धत भाव से प्रश्न किया—हमेशा से लोग तालाब में ही कपड़े-लत्ते धोते आये हैं। तालाब में न धोवें तो क्या तुम्हारे सिर पर धोवें ?

वृन्दावन ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—यह तालाब मेरा है। आप अगर मना करने से न मानेंगे तो मैं आपके घर के किसी आदमी को इसमें उतरने न दूँगा।

ब्राह्मण ने आपे से बाहर होकर कहा—तालाब में उतरने न देगा तो हम और कहाँ जायँगे, बता दे ?

वृन्दावन ने कहा—मेरा मतलब यही है कि यहाँ से आप केवल गिरस्ती के कामों के लिए पानी ले सकते हैं। कपड़े-लत्ते छाँटना हो तो उधर मैदान के किनारे की गढ़ैया में जाकर छाँटा कीजिए। बस!

तारिणी ने मुँह बनाकर कहा—नीच जाति होकर तू ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करता है! तेरी इतनी मजाल! औरतों को मैदान में जाकर कपड़े धोने को तू कहता है ? अकेले मेरे ही यहाँ यह विपत्ति नहीं आई है, तेरे यहाँ भी आवेगी रे!

वृन्दावन ने वैसे ही शान्त किन्तु दृढ़ भाव से कहा—मैं औरतों को मैदान में जाकर कपड़े धोने के लिए नहीं कहता। आपके घर में कोई नौकर-चाकर नहीं है, यह भी मैं जानता हूँ। अगर आप मनुष्य हैं और इज़्ज़त का ख़याल रखते हैं तो ख़ुद जाकर कपड़े धो लाइए। आप इस समय शोक से व्याकुल हैं, आपको कोई कड़ी बात कहना मैं नहीं चाहता।

लेकिन हज़ारों गालियाँ देने और कोसने पर भी मैं आपको इस तालाब का पानी ख़राब न करने दूँगा।

इतना कहकर और अधिक झगड़ा न बढ़ने देने के इरादे से वृन्दावन घर चला गया।

दस-बारह मिनट के बाद ही घोषाल महराज वृन्दावन के दरवाज़े पर आकर उसे पुकारने लगे। घोषाल महराज तारिणी मुखर्जी के नातेदार हैं। वृन्दावन जैसे बाहर आया वैसे ही उन्होंने कहना शुरू कर दिया—क्यों भैया वृन्दावन! तुमको सब लोग बहुत अच्छा लड़का समझते हैं। मगर यह तुम्हारा कैसा व्यवहार है? ब्राह्मण बेचारा पुत्र के शोक से आप ही मर रहा है, उस पर तुमने उसका अपमान किया, उसे तालाब पर नहीं जाने दिया—यह क्या सच है?

वृन्दावन ने कहा—मैंने तालाब में मैले-गन्दे कपड़े धोने को मना किया है, पानी लेने को नहीं मना किया।

घोषाल—यह तुमने अच्छा नहीं किया भैया। अच्छा, मैं तारिणी से कहे देता हूँ, वह तुम्हारी बात रखने के लिए घाट पर नहीं, ज़रा हटकर कपड़े-लत्ते धोवेगा। बस?

वृन्दावन—जी नहीं, यह न होगा। केवल इसी एक तालाब से गाँव भर के लोगों का काम चलता है। ऐसी महा-मारी के समय में मैं इसके जल को कभी ख़राब न करने दूँगा।

विज्ञ घोषाल महराज ने रुष्ट होकर कहा—यह तुम्हारी बेजा ज़िद है वृन्दावन! शास्त्र के मतानुसार जिस तालाब की

प्रतिष्ठा की गई हो उसका पानी किसी तरह अपवित्र या ख़राब नहीं होता। दो पन्ने अँगरेज़ी के पढ़कर शास्त्र पर विश्वास न करने से कैसे काम चलेगा भैया?

एक ही बात सैकड़ों दफ़े कहते-कहते वृन्दावन थक गया था। उसने खीझकर कहा—"शास्त्र पर मुझे पूरा विश्वास है। हाँ, आप लोगों के मनगढ़न्त शास्त्र को अवश्य ही मैं नहीं मानता। मैंने जो कह दिया वही होगा—मैं तालाब के पानी में ऐसे गन्दे कपड़े कभी न धोने दूँगा। और किसी के यहाँ ग़मी होती तो वह इन सब रोगी के कपड़ों को जला डालता। लेकिन आप लोग जब उन कपड़ों का लोभ छोड़ न सकेंगे तब यही एक उपाय है कि मैदान की गढ़ैया में जाकर धो लाइए। मेरे तालाब में यह काम न होने पावेगा।" इतना कहकर वृन्दावन भीतर चला गया।

शास्त्र के बड़े भारी जानकार घोषाल महराज भी वृन्दावन का सर्वनाश मनाते हुए चले गये। किन्तु वृन्दावन अच्छी तरह जानता था कि इस झगड़े की इतिश्री यहीं पर नहीं होने की। इसी से उसने एक आदमी को तालाब पर पहरा देने के लिए भेज दिया। दिन भर बीत गया, रात को नव बजे के समय उस आदमी ने ख़बर दी कि तालाब के पानी में कपड़े धोये जा रहे हैं और तारिणी मुखर्जी किसी तरह मना करने से नहीं मानता। वृन्दावन दौड़ा गया। देखा, तारिणी की विधवा बेटी तकिए के ग़िलाफ़, बिछौने

की चादर तथा और भी बहुत से छोटे-बड़े कपड़े पानी में धो-धोकर पानी में ही निचोड़ रही है। तारिणी ख़ुद खड़ा हुआ यह सब काम करा रहा है।

१२

दूसरे दिन सबेरे ही वृन्दावन ने माता की इच्छा और आज्ञा के अनुसार चरन को अपने पास बुलाकर कहा—अपनी माँ के पास जायगा रे चरन ?

चरन का हृदय ख़ुशी से खिल उठा। उसने कहा—हाँ, जाऊँगा बप्पा।

वृन्दावन के मन में कुछ चोट सी पहुँची। उसने कहा—लेकिन, वहाँ जाकर तुझे बहुत दिन रहना पड़ेगा। मेरे बिना रह सकेगा भला तू ?

चरन ने फ़ौरन् सिर हिलाकर कहा—रह सकूँगा।

वास्तव में यहाँ कड़ी देख-रेख और विधि-निषेध के बन्धन में जकड़े रहने से चरन का बाल-हृदय ऊब उठा था। वह बाहर दौड़-धूप करके खेलने नहीं पाता। पाठशाला बन्द होने के कारण सङ्गी-साथियों का मुँह देखना तक मोहाल है। दिन-रात के अधिकांश समय में घर के भीतर ही बन्द रहना पड़ता है। चारों ओर एक प्रकार के भय, त्रास और उदास भाव की भरमार रहती है। कोई बात अच्छी तरह समझ में न आने पर भी भीतर ही भीतर वह बहुत ही व्याकुल हो उठा था। किन्तु वहाँ माता का अगाध स्नेह और अबाध स्वाधीनता

थी। नहाने, खाने और खेलने आदि किसी काम में रोक-टोक, बन्धन या निषेध नहीं था। हज़ार अपराध करने पर भी हँस कर स्नेहपूर्ण तिरस्कार के सिवा किसी की टेढ़ी भौहें नहीं देखनी पड़तीं, किसी की डाँट-डपट और घुड़की नहीं सुननी पड़ती। इसी से बालक चरन तत्काल ही घर से निकलकर माता के पास जाने के लिए छटपटाने लगा।

"अच्छा तो जा।" कहकर वृन्दावन ने अपने हाथ से एक छोटे से टीन के ट्रङ्क में चरन के कपड़े रक्खे। खर्च के लिए कुछ रुपये भी उसी में रख दिये। लड़के को मय ट्रङ्क के गाड़ी पर सवार कर दिया। फिर आँखों में आँसू भरकर बालक का मुँह चूमकर उसे उसकी माँ के पास भेज दिया। इतने दुःख में भी वृन्दावन ने एक गहरी आराम की साँस ली। जो नौकर लड़के के साथ गया उसे पुत्र पर हर घड़ी सावधानी से दृष्टि रखने के लिए वृन्दावन ने बारम्बार अनेक प्रकार से सचेत कर दिया। यह भी आज्ञा दी कि नित्य न सही, एक दिन बाद कुशल-संवाद देना न भूलना, और ख़ुद आकर सब हाल अवश्य कह जाना। वृन्दावन ने अपने मन में कहा—अगर फिर कभी पुत्र को न देख पाऊँ तो वह भी अच्छा, लेकिन इस घोर आपत्ति के भीतर मैं उसे अब नहीं रख सकता।

गाड़ी जब तक देख पड़ी तब तक वृन्दावन एकटक उधर ही ताकता रहा। अन्त को आँखों की ओट हो जाने पर भीतर आकर कुछ देर तक इधर-उधर करके एकाएक उस दिन की

बातचीत याद आते ही उसे यह शङ्का हुई कि कहीं कुसुम इससे नाराज़ न हो। उसने मन में कहा—ना, यह काम ठीक नहीं हुआ। इतने बड़े एक हठी और क्रोधी मनुष्य पर विश्वास नहीं होता। ख़ुद साथ गये बिना शायद वह उलटा समझ-कर एकदम आग-बबूला हो उठेगी। यह ख़याल आते ही कन्धे पर एक चादर डालकर वह चटपट चल दिया, और झप-टता हुआ गाड़ी के पास पहुँचकर उस पर सवार हो गया। लड़के के पास बैठकर जैसे उसकी जान में जान आई।

कुञ्जनाथ के घर के सामने पहुँचकर घर के बाहर का दृश्य देखते ही वृन्दावन आश्चर्य से चकित हो गया। जान पड़ता था, जैसे बहुत दिनों से कोई यहाँ रहता ही नहीं है। दरवाज़ा खुला हुआ था। लड़के को लेकर भीतर गया तो वहाँ भी वैसे ही किवाड़े खुले मिले। घर क्या था जङ्गल हो रहा था।

आहट पाकर कुसुम अपनी कोठरी से "दादा" कहकर जैसे बाहर आई वैसे ही अकस्मात् इन लोगों को देखकर ईर्ष्या और अभिमान से जल उठी, और पलक मारते ही पीछे हटकर कोठरी में चली गई। चरन पहले की तरह बड़े आनन्द और उल्लास से चिल्लाता हुआ दौड़कर कुसुम से लिपट गया। कुसुम उसे गोद में लेकर, ठीक तौर से घूँघट खींचकर, चार-पाँच मिनट के बाद बाहर आई।

वृन्दावन ने पूछा—कुञ्ज दादा कहाँ हैं?

कुसुम—क्या जानें, कहीं घूमने गये होंगे।

वृन्दावन ने कहा—घर की क्या दशा हो रही है; जान पड़ता है, बरसों से इसमें कोई नहीं रहता। इन दिनों तुम लोग क्या यहाँ नहीं थे ?

कुसुम—नहीं।

वृन्दावन—कहाँ थीं ?

महीने भर पहले कुसुम अपने दादा की सास के साथ मथुरा-काशी आदि तीर्थों की यात्रा करने गई थी। कल शाम ही को लौटकर घर आई थी।

परन्तु यह सब हाल न कहकर अवहेला का भाव दिखाते हुए उसने कहा—यहाँ-वहाँ, बहुत जगह।

और दफ़े कुसुम सबसे पहले बैठने के लिए आसन दिया करती थी। परन्तु अब की उसने वैसा नहीं किया। यह देख कर वृन्दावन ने ख़ुद ही कहा—खड़ा हूँ, बैठने के लिए तो कुछ दो।

कुसुम ने वैसे ही अवज्ञा के साथ कहा—क्या जाने, कहाँ आसन पड़ा है, देख नहीं पड़ता।

यह कहकर वह खड़ी हो रही। वहाँ से एक पग भी नहीं हिली। वृन्दावन अवज्ञा-अनादर, सब कुछ सहने के लिए तैयार होकर घर से आया था। फिर भी इतने बड़े अपमानजनक व्यवहार से उसको बड़ी कड़ी चोट लगी। किन्तु उस दिन, उत्तेजना के वश होकर, कलह करने का हीन भाव उसके मन में न होने के कारण कुछ देर चुप रहकर उसने नम्र और नरम स्वर से कहा—मैं अधिक देर तक तुमको तङ्ग

नहीं करूँगा। जिस लिए आज आया हूँ, वह कहता हूँ। सुनो। मेरे गाँव में बड़ी बीमारी है। इसी से चरन को तुम्हारे पास छोड़ जाने का विचार है।

इतने दिन यहाँ न रहने के कारण कुसुम यह नहीं जानती थी कि बीमारी साधारण नहीं, महामारी है। अतएव तीव्र अभिमान से जल-भुनकर उसने कहा—अच्छा, इसी से दया करके चरन को ले आये हो? लेकिन बीमारी कहाँ, किस देश में, नहीं है? और मैं ही किस साहस से पराये लड़के की ज़िम्मेदारी अपने सिर लूँ?

वृन्दावन ने शान्त भाव से कहा—मैं जिस साहस से अपने सिर लेता हूँ ठीक उसी साहस से। इसके सिवा मैं समझता हूँ, वह तुम्हीं को सबसे अधिक प्यार करता है; तुम्हीं से सब से अधिक हिल गया है।

इसके प्रत्युत्तर में कुसुम कुछ कहने जा रही थी, इतने में चरन ने हाथ से कुसुम के मुँह को अपने मुँह के पास लाकर कहा—माँ, बप्पा ने कह दिया है, मैं तुम्हारे पास रहूँगा। नहाने न चलोगी?

कुसुम ने इसके उत्तर में वृन्दावन को सुनाकर कहा—मेरे पास तुम्हारे रहने का काम नहीं है चरन। तुम्हारी नई माँ जब आवे तब उसीके पास रहना।

वृन्दावन ने बहुत ही मलिन हँसी हँसकर कहा—तो यह भी तुम सुन चुकी हो! अच्छा तो वह भी कहता हूँ, सुन लो।

माँ से अब अकेले घर का काम-धन्धा नहीं होता, इसी के लिए एक बार यह बात ज़रूर उठी थी लेकिन अब रुक गई है।

कुसुम—क्यों, रुक क्यों गई ?

वृन्दावन—उसका एक कारण है; किन्तु उसके कहने-सुनने की ज़रूरत नहीं है। चरन, आ, चलें—देर हो रही है।

चरन ने ख़ुशामद से कहा—बप्पा, कल जाऊँगा।

वृन्दावन चुप हो रहा। कुसुम ने भी कुछ न कहकर चरन को गोद से उतार दिया। दो मिनट के बाद वृन्दावन ने गम्भीर स्वर से लड़के को पुकारकर कहा—अब और देर न कर चरन, चल।

वृन्दावन उठकर धीरे-धीरे चल दिया।

चरन बड़ा दुलारा और प्यारा लड़का होने पर भी अपने बड़ों की आज्ञा का पालन करना सीख गया था; तथापि उसने माता के मुँह की ओर एक बार सतृष्ण दृष्टि से देखा। अन्त को क्षोभ-पूर्ण मुँह से एक लम्बी साँस छोड़कर वह चुपचाप पिता के पीछे-पीछे चलकर बाहर आ पहुँचा।

गाड़ीवान बैलों को पानी पिलाने ले गया था। बाप-बेटे, दोनों उसकी प्रतीक्षा में सड़क पर खड़े रहे। अबकी कुसुम ने भीतर से दरवाज़े के पास आकर किवाड़ों की दरज़ से स्वामी का चेहरा जो देखा तो चौंक उठी। वृन्दावन के अब वह पहले का लावण्य नहीं रह गया, मुख पीला पड़ गया है, आँखें गढ़े में चली गई हैं। अब कुसुम अपने को सँभाल

न सकी। एकाएक किवाड़ों की आड़ से ही उसने पुकारा—ज़रा सुनो तो।

वृन्दावन ने पास आकर पूछा—क्या है ?

कुसुम—अच्छा, तुम इतने दुबले और बीमार से क्यों हो रहे हो ?

वृन्दावन—कह नहीं सकता। शायद दुर्भावना और चिन्ता के कारण मुँह सूखा देख पड़ता होगा।

दुर्भावना, चिन्ता !—स्वामी के मलिन, खिन्न मुख की ओर देखकर कुसुम के हृदय की जलन कुछ कम हो आ रही थी, यह आख़री बात सुनकर फिर आग जल उठी। उसने श्लेष के स्वर में कहा—तुम्हें तो सोलहों आने सुख है। दुर्भावना और चिन्ता काहे की है ?

वृन्दावन ने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। गाड़ी तैयार होते ही चरन उस पर चढ़ने लगा। वृन्दावन ने उससे कहा—अपनी माँ के पैर नहीं छू आया ?

लड़के ने उतरकर दरवाज़े के बाहर ही धरती में सिर रखकर प्रणाम किया। कुसुम ने व्यग्र भाव से हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा, पर वह तेज़ी से भागकर बाप के पास चला गया। सब बातें समझ में न आने पर भी चरन ने इतना अच्छी तरह समझ लिया था कि माँ ने आज उसका आदर नहीं किया; वह रहने आया था, मगर माता ने उसे अपने पास नहीं रक्खा।

वृन्दावन ने कुसुम के और भी पास आकर धीमे स्वर में कहा—कौन जाने, शायद फिर कभी कहने का अवसर न मिले, इसी से आज ही कहे जाता हूँ। आज क्रोध के मारे तुमने चरन को नहीं रक्खा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन मेरे न रहने पर ऐसा न करना, उसको आश्रय अवश्य देना।

कुसुम व्यस्त होकर बाधा दे उठी—ये सब अंट-संट बातें मैं नहीं सुनना चाहती।

वृन्दावन—तो भी सुनो। आज मैं चरन को तुम्हारे ही हाथ में सौंपने आया था।

कुसुम—तुमको मेरा विश्वास क्या?

वृन्दावन की आँखों में आसू भर आये। उसने कहा—फिर भी वही क्रोध! कुसुम, तुमने बहुत कुछ सीखा है लेकिन यह क्यों नहीं सीखा कि स्त्री-जाति की सबसे बड़ी शिक्षा क्षमा करना सीखना ही है। हाँ, तुम चरन की माँ हो, यही मेरा विश्वास है। लड़के को माँ-बाप के हाथ में सौंपने में अगर विश्वास न किया जाय तो फिर और किसके हाथ में सौंपने पर विश्वास किया जाय?

कुसुम को एकाएक इसका जवाब कुछ न सूझा।

गाड़ी के दोनों बैल घर लौटने के लिए तेज़ी कर रहे थे। चरन ने पुकारा—बप्पा, आओ।

कुसुम के कुछ कहने के पहले ही "जाता हूँ" कहकर वृन्दावन चल दिया, और गाड़ी पर सवार हो गया।

कुसुम जहाँ खड़ी थी वहीं बैठकर खीझ के साथ अपनी परलोक-गत माता को स्मरण करती हुई कहने लगी—माता होकर अपनी सन्तान से तुम यह कैसी असह्य शत्रुता कर गईं माँ! अगर सचमुच मेरे अनजान में तुम मुझे (पुनर्विवाह के) कलङ्क की कीच में डुबा गई हो, अगर सचमुच अपने घृणित घोर घमण्ड के पैरों के नीचे तुमने मेरी बलि दे दी थी, तो वह रहस्य स्पष्ट करके खुलासा मुझसे कह क्यों न गईं? किसके डर से तुम इस सम्बन्ध के सभी चिह्न इस तरह मिटा गईं? मेरा अन्तर्यामी, मेरी आत्मा, मेरा हृदय जिन्हें पति और पुत्र मान रहा है—मेरी अन्तरात्मा ने जिन्हें 'अपना' पहचान लिया है—उन्हें संसार के सामने 'अपना' प्रमाणित करने की कुछ भी राह तुमने नहीं रक्खी! ऐसा क्यों किया? अगर आज मेरे लिए पति-पुत्र को अपना आदमी साबित करने की राह काँटों से रुँधी न होती तो मेरी यह शोचनीय दशा क्यों होती? उस हालत में किस निर्लज्ज पति की मजाल थी कि वह अपनी ही स्त्री को, अनाथ की तरह, आश्रय की भिक्षा माँगते हुए अपने घर आने का उपदेश देने की हिम्मत करता?—या, मैं विधवा ही हूँ तो वह भी मुझको निश्चित रूप से मालूम हो जाना चाहिए। यह भी निस्सन्देह होकर मान लेने का कोई उपाय या प्रमाण नहीं देख पड़ता। यदि मालूम हो जाता कि मैं वास्तव में विधवा हूँ, तो फिर किसकी मजाल थी कि वह विधवा के सामने, उसके रूप पर रीझकर, विधवा-विवाह की

बात ज़बान पर ला सकता? आह! क्या करूँ, कुछ नहीं सूझता!

कुसुम बहुत देर तक एक जगह, एक ही आसन से, बैठी रोती रही। फिर आकाश की ओर आँखें करके हाथ जोड़कर बोली—भगवन्! चाहे जो हो, मेरा कोई न कोई उपाय कर दीजिए। या तो गर्व के साथ सिर ऊँचा करके स्वामी के घर जाने दो, या बचपन के वे ही निश्चिन्त-निर्विघ्न दिन लौटा दो, जिसमें मैं इस मानसिक व्यथा से छुटकारा पाऊँ।

१३

उस दिन जब दादा के मुँह से यह ख़बर सुनी कि स्वामी फिर विवाह की तैयारी कर रहे हैं तब "क्या करूँ, कहाँ भाग जाऊँ!" की धुन के साथ रह-रहकर तरह-तरह के सङ्कल्प-विकल्प कर रही कल्पना की उधेड़-बुन ने कुसुम की मानसिक स्थिति को शोचनीय बना दिया था। ऐसे ही समय में कुञ्ज ने अपनी सास के साथ तीर्थ-यात्रा कर आने का प्रस्ताव उससे किया था, और कुसुम भी सहज ही में राज़ी हो गई थी। कुञ्ज की सास ने अपने सुख और सुबीते के लिए ही कुसुम को टहलुई की जगह साथ लिया था। वह कुसुम से वैसा ही व्यवहार करती और सारा काम कराती थी। मगर कुसुम की मानसिक अवस्था उन दिनों ऐसी न थी कि वह इस तरह की छोटी-मोटी बातों पर ध्यान दे सकती। इसी से नलडाँगा (कुञ्ज की ससुराल) में लौटकर जब कुसुम ने अपने घर

जाना चाहा तब कुञ्ज की सास ने साँपिन की तरह गरजकर कहा था—पागलों की सी बातें न करो। हम बड़े आदमियों के दुश्मन पग-पग पर हैं। तुम सयानी लड़की वहाँ अकेली पड़ी रहोगी तो हम चार भाई-बन्दों में, समाज के आगे, मुँह नहीं दिखा सकेंगी।

कुसुम ने फिर भी कुछ प्रतिवाद नहीं किया कि तुम यह क्या कहती हो।

क्षण भर बाद फिर उन्होंने कहा था—जी चाहे तो अपने दादा के साथ जाओ, घर-दुआर देखकर दादा के साथ ही लौट आना। अकेले वहाँ किसी तरह तुम्हारा रहना न हो सकेगा, यह मैं कहे देती हूँ।

कुसुम इसी में राज़ी होकर कल शाम को अपना घर देखने आई थी।

आज चरन वग़ैरह के चले जाने पर लगभग दो घण्टे बाद कुञ्जनाथ ज़मींदारी चाल और शान से सारे गाँव में घूम-फिरकर घर आया और नहा-धोकर खा-पी चुकने पर सो रहा। तीसरे पहर बहन को लेकर उसने ससुराल जाने की तैयारी की। कुसुम कोठरी वग़ैरह में ताला बन्दकर चुपचाप गाड़ी में जा बैठी। वह जानती थी कि उसका दादा वृन्दावन वग़ैरह से खुश नहीं है। इसी से उसने सवेरे का कुछ हाल उससे नहीं कहा।

कुञ्ज की स्त्री का नाम था व्रजेश्वरी। वह जैसी बातूनी और चर्बज़बान थी, वैसी ही झगड़ालू और लड़ने में निपुण।

अभी पूरे पन्द्रह बरस की उमर नहीं हो पाई थी, लेकिन उसकी बातों की तीक्ष्णता और उनके भीतर भरे हुए विष की ज्वाला के आगे उसकी कर्कशा माँ को भी हार मानकर आँसू बहाने के लिए लाचार होना पड़ता था।

किन्तु वही व्रजेश्वरी—न जानें क्यों—आँखें चार होते ही कुसुम को प्यार करने लगी। कहना न होगा, उसकी माँ इससे खुश नहीं हुई थी। वह लड़की के सामने तो कुसुम को कुछ कह न सकती थी, लेकिन उसके पीछे जो मन में आता वही कुसुम को कह-सुनकर अपने दिल का बुख़ार निकालने में कसर न रखती थी।

घर के सामने ही तालाब था। आने के तीन-चार दिन बाद ही एक दिन सबेरे कुसुम कुछ बरतन लेकर धोने को तालाब पर जा रही थी कि इतने में व्रजेश्वरी ने एकाएक अपनी कोठरी से निकलकर तीखे स्वर में पूछा—भला ननदजी, माँ तुमको क्या महीना देने को कहकर यहाँ लाई हैं?

माँ थोड़ा ही दूर पर भण्डारे की कोठरी के आगे कुछ काम कर रही थी। लड़की के तीव्र श्लेषपूर्ण प्रश्न को सुन-कर अचरज और क्रोध के मारे गरजकर बोली—यह तेरी कैसी बातचीत है भला? कोई अपने आदमी को महीना मुकर्रर करके लाया करता है?

लड़की ने उत्तर दिया—'अपना आदमी' कहो तो यह मेरी सगी ननद होती हैं; तुम्हारी कौन हैं? दुखिया आदमी से दासी-वृत्ति कराओगी, और महीना न दोगी?

इसके उत्तर में माँ ने झपटकर, पास आकर, कुसुम के हाथ से सब बरतन छीन लिये। अब वह आप उन्हें माँजने-धोने को तालाब पर चल दी।

कुसुम से कुछ करते-धरते न बना। वह सन्नाटे में आकर जहाँ की तहाँ खड़ी रह गई। व्रजेश्वरी ने उसके मुँह की ओर देखकर मुसकाते हुए कहा—"जाने दो," और अपनी कोठरी में चली गई।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कुञ्ज की सास ने कुसुम को लक्ष्य करके ख़ूब ताने कसे, कड़ी-कड़ी बातें कहीं, और इस तरह दिल का ग़ुबार निकाला। लेकिन अकस्मात् एक दिन उनका व्यवहार बिलकुल ही बदल गया। यह देखकर व्रजेश्वरी को बड़ा अचम्भा हुआ।

कल रात को तबियत अच्छी न होने से कुसुम ने कुछ खाया-पिया न था। आज सबेरे ही पुरखिन ने स्नान-पूजा आदि करके कुसुम से खा लेने के लिए कहना शुरू किया। वह उसके पीछे ही पड़ गई।

व्रजेश्वरी ने पास आकर चुपके से कहा—ननदजी, मैं इसी चिन्ता में पड़ी हूँ कि आज माँ का ढङ्ग क्यों बदला हुआ है?

कुसुम चुप रही। लेकिन लड़की अपनी माँ को ख़ूब पहचानती थी। इसी से दो ही दिन बाद इस अकस्मात् भाव-परिवर्तन के कारण का अनुमान करके जो उसे सन्देह हुआ, उससे वह मन ही मन आग हो उठी।

पुरखिन की बहन का एक लड़का था। नाम उसका गोवर्द्धन था। वह बदचलन, बदमिज़ाज और बदमाश था। ताड़ी, गाँजा, चण्डू-मदक, शराब वग़ैरह तरह-तरह के नशों का बेहद इस्तेमाल करने से उसका चेहरा ऐसा हो गया था कि उसकी उमर का अन्दाज़ लगाना कठिन था। यह नहीं जान पड़ता था कि वह पैंतीस वर्ष का है या पैंसठ वर्ष का। उसे कोई अपनी लड़की देने को तैयार नहीं हुआ, इसलिए वह अब तक कौंरा ही था। उसका घर दूसरी बस्ती में था। वह पहले ऐसे ही कभी यदा-कदा मौसी के घर आ जाया करता था; किन्तु इन दिनों किसी अज्ञात कारण से मौसी के ऊपर उसकी भक्ति और प्यार इतना अधिक बढ़ उठा था कि रोज़ बिला नाग़ा, जब देखो तब, वह मौसी के यहाँ हाज़िर हो जाता था; मौसी के पास बहुत देर तक बैठकर न जाने कहाँ की कौन सी बातें किया करता और उनके उपदेश सुना करता था।

आज तीसरे पहर ब्रजेश्वरी कुसुम के साथ तालाब पर नहाने गई थी। पानी में उतरने पर उसकी नज़र अकस्मात् घाट के पास ही एक घने कामिनी के पेड़ों के झुरमुट पर जो पड़ी, तो उसने क्या देखा कि उसकी आड़ में खड़ा हुआ गोवर्द्धन एकटक इसी ओर ताक रहा है। उस समय और कुछ न कहकर, किसी तरह अपना काम करके, ब्रजेश्वरी घर लौट आई। घर में पैर रखते ही उसने देखा, आँगन में खड़ा

हुआ गोवर्द्धन मौसी से अपनी बातें कर रहा है। कुसुम तो लम्बा घूँघट काढ़कर तेज़ी से एक ओर दबकर भीतर चली गई किन्तु व्रजेश्वरी ने गोवर्द्धन के पास जाकर पूछा--अच्छा गोवर्द्धन दादा, पहले तो मैं कभी तुम्हारी सूरत महीनों न देख पाती थी। आजकल एकाएक क्यों इतनी दया करने लगे हो, भला बताओ तो? घर के भीतर आना-जाना ज़रा कम कर दो तो अच्छा हो।

गोवर्द्धन यह नहीं जानता था कि व्रजेश्वरी ने उसे देख लिया है; किन्तु इस प्रश्न से वह चौकन्ना हो उठा। घबराहट के मारे जल्दी से वह कुछ उत्तर न दे सका। किन्तु उसकी मौसी आग-बबूला हो उठी। उसने आँखें लाल करके चिल्लाकर कहा--पहले उसका जी नहीं चाहता था, नहीं आता था; अब जी चाहता है, इसी से आता है। तेरा क्या?

बेटी ने ग़ुस्सा नहीं किया। उसने स्वाभाविक सहज स्वर में कहा—मैं इस जी चाहने को ही पसन्द नहीं करती। मैं अपने लिए कुछ नहीं कहती माँ; मगर मेरी ननद आई हुई है, वह पराई बेटी और बहू है, यह याद रखना होगा।

माँ ने सप्तम में चढ़कर जवाब दिया—पराई लड़की आई है तो क्या उसके कारण मेरी बहन का लड़का घर न आवेगा? क्या भाईबन्द, नातेदार छूट जायँगे? फिर यह पराई बेटी क्या कोई परदे की बीबी है? क्या किसी के सामने निकलती नहीं है? अरे, वह जिस तरह सबके सामने

निकलती हैं उसे देखकर तो मुझ जैसी बूढ़ी औरतें भी शरमा जाती हैं!

व्रजेश्वरी समझ गई कि उसकी माँ का क्या इशारा है, इसी से वह रुक गई। उसे याद आ गया कि इसी कुसुम की कितनी ही बातों का बखान किस ढङ्ग से अभी दो दिन पहले वह अपनी माँ के आगे कर चुकी है। किन्तु उस समय की बात और थी, और इस समय की और है। उन दिनों वह कुसुम को चाहती न थी, अब प्यार करती है। और, इस तरह का प्यार भगवान् के आशीर्वाद के बिना न तो किसी को दिया जा सकता है, और न पाया जा सकता है।

जाने के लिए उद्यत होकर व्रजेश्वरी ने गोवर्द्धन के चेहरे पर तीव्र दृष्टि डालकर कहा—गोवर्द्धन दादा, बड़ी शर्म की बात है भाई, मुँह से कह नहीं सकती, लेकिन मैंने सब देख लिया है। भाई की तरह आना हो तो आओ, नहीं तो यह मैं कहे देती हूँ कि तुम्हारे भाग्य में दुःख बदा है—उस दुःख से तुमको मेरी माँ भी नहीं बचा सकेंगी। याद रखना।

इतना कहकर व्रजेश्वरी भीतर चली गई।

मौसी ने पूछा—क्या हुआ गोवर्द्धन?

गोवर्द्धन का चेहरा लाल हो गया। उसने कहा—"तुम्हारी क़सम मौसी, मैं नहीं जानता साला कौन था वह—उस झाड़ के पास आड़ में—क़सम खाकर कहता हूँ तुमसे—एक दतून तोड़ने—चलकर हलवाई की दूकान पर पूछ लो—वह उस

मोहल्ले का था—कभी मिलेगा नहीं?—हाथ-पैर तोड़ डालूँगा''—इसी तरह की असम्बद्ध बातें कहता हुआ गोवर्द्धन खिसक गया।

व्रजेश्वरी ने धोती बदलकर कुसुम के पास जाकर देखा, वह अभी तक वही भीगी धोती पहने चुपचाप खिड़की के पास खड़ी बाहर ताक रही है। पैरों की आहट पाते ही मुँह फेर-कर, रुँधे हुए गले से, कुसुम कह उठी—भौजी, तुमने क्यों मेरे लिए इतनी बातें कहीं? मुझे क्या तुम यहाँ भी न रहने दोगी?

"पहले धोती उतारो, फिर सब हाल कहूँगी" कहकर व्रजेश्वरी ने ज़बरदस्ती धोती बदलाकर कहा—किसी के अन्याय को मैं किसी तरह सह नहीं सकती ननदजी, वह चाहे तुम्हारे ऊपर हो, चाहे मेरे ऊपर। इस बदमाश को मैं घर में न घुसने दूँगी; उसका मतलब मैं ख़ूब ताड़ गई हूँ।

अपनी माँ की साज़िश का हाल व्रजेश्वरी मारे लज्जा के कह न सकी।

कुसुम रुआसी होकर बोली—किसी का कुछ भी मतलब क्यों न हो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ बहन, मेरे बारे में बात बढ़ाकर अब और अधिक आफ़त में मुझे न डालना।

व्रजेश्वरी—लेकिन मेरे जीते रहते आफ़त ही कैसे होगी?

कुसुम ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाते हुए कहा—ज़रूर होगी। मुझे स्पष्ट देख पड़ रहा है। (ज़ोर से माथे पर हाथ मारकर) इस जले नसीब को लेकर जहाँ जाऊँगी वहाँ विपत्ति

साथ-साथ जायगी। जान पड़ता है, ख़ुद भगवान् भी मेरी रक्षा न कर सकेंगे!

कुसुम अब रोने लगी। व्रजेश्वरी ने स्नेहपूर्वक उसके आँसू पोंछ दिये और दम भर चुप रहकर धीरे-धीरे कहा—मैं समझती हूँ, तुम्हारा यह कहना एकदम झूठ भी नहीं है। नाराज़ न होना बहन, तुम अपने भाग्य को दोष देती हो, यह ठीक नहीं है। केवल भाग्य को दोष देने से क्या होगा? तुम्हारा ख़ुद अपना भी दोष तो कुछ कम नहीं है ननदजी।

कुसुम ने उसके मुँह की ओर देखकर पूछा—मेरा अपना दोष क्या है भला? मेरे लड़कपन की सब बातें तो तुम सुन चुकी हो न?

व्रजे०—सुन चुकी हूँ। लेकिन वे तो सब आदि से अन्त तक झूठ हैं। सब जान-बूझ कर भी, सधवा होने पर भी, तुम माँग में सेंदुर नहीं लगातीं, हाथों में चूड़ियाँ नहीं पहनतीं, स्वामी के घर नहीं जातीं! यह भाग्य का दोष है या ख़ुद तुम्हारा बहन? मैंने मान लिया कि उन दिनों तुम्हें इतनी समझ न थी, लेकिन अब तो सब समझती-बूझती हो? तुम्हीं बताओ, कौन सुहागिन ग़ुस्से के मारे विधवा के वेष से रहती है?

कुसुम—मैं सब कुछ जानती और समझती हूँ, लेकिन मेरे सेंदुर लगाने और चूड़ियाँ पहनने से ही तो लोग न मान लेंगे?

कौन मेरा स्वामी है? कौन इस बात का साक्षी है? और, वही मुझे क्यों इस तरह ग्रहण करने लगे?

व्रजेश्वरी सुनकर आश्चर्य से दङ्ग रह गई। उसने कहा—तुम यह क्या कह रही हो ननदजी? इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए? तुमने क्या कुछ भी नहीं सुना? इसी बारे में नन्द काका के साथ इसी घर में बातचीत हो गई है, इसकी क्या तुमको कुछ भी ख़बर नहीं है? (दम भर चुप रहकर) क्यों, तुम्हारे दादा तो सब कुछ जानते हैं। उन्होंने क्या तुमसे कुछ भी नहीं कहा? मैं समझती थी कि तुम सब सुन-समझ कर ही यहाँ आई हो। इसी से, तुम कहीं गुस्सा न करो—तुम्हें मन में दुःख न हो—यह सोच कर तुमसे मैंने कुछ नहीं कहा, चुप रही। बल्कि सच पूछो तो यहाँ तुम्हारे आने के कारण पहले दिन तुम पर मुझे बड़ा ग़ुस्सा आया था।

कुसुम उद्वेग के मारे अधीर हो उठी। बोली—मैंने तो कुछ भी नहीं सुना भौजी! क्या हुआ था, बताओ तो?

व्रजेश्वरी ने एक साँस छोड़कर कहा—ख़ूब! जैसा भाई है वैसी ही बहन! नन्दोईजी के साथ नन्द काका की लड़की के ब्याह की बातचीत जिस समय हो रही थी उस समय तुम पछाँह की तरफ़ गई थीं। उस समय तुम्हारे दादा ने ही तो इस मामले को इतना तूल कर दिया, इतना झगड़ा खड़ा किया, और अब बिलकुल चुप्पी साध ली है! मेरी

सास की बात उठी, तुम्हारी बात उठी, उन लोगों की बात उठी; सभी बातें कही-सुनी गईं। नन्द काका को असली भेद मालूम था। मगर इस डर से कि कहीं उनकी बेटी का ब्याह उचट जाय, उन्होंने सच बात नहीं बताई। उसके बाद ठाकुरबाड़ी के बड़े बाबाजी बुलाये गये। उन्होंने निर्णय करके साफ़ कह दिया कि सब झूठ है। क्योंकि एक तो उन्हें जताये बिना, उनकी मञ्जूरी लिये बिना, हमारे समाज में ब्याह शादी वग़ैरह का कोई काम हो ही नहीं सकता; और जो दुबारा तुम्हारा ब्याह होता तो उनसे छिपा नहीं रह सकता था। इसके सिवा उन्होंने नन्द काका को यह हुक्म दिया कि अगर यह बात सच है तो जिसने यह काम कराया था उसको लाकर हाज़िर करो। तब, लाचार होकर, नन्द काका को यह मानना पड़ा कि दुबारा तुम्हारी "कण्ठीबदलौवल" की सिर्फ़ बातचीत ही हुई थी। कण्ठीबदलौवल नहीं हुई।

कुसुम आशङ्का से साँस रोके हुए सुन रही थी। वह कह उठी—नहीं हुई? भौजी, मेरा मन मुझसे यही बात कह रहा था। लेकिन यह तो बताओ, मेरी ही बात क्यों यहाँ तक उठाई गई?

ब्रजेश्वरी ने हँसकर कहा—तुम्हारे दादा के ज़रा सनक सी है कि नहीं। बहन, और कोई होता तो सङ्कोच के मारे शायद इस बात पर इतनी रगड़ न करना चाहता; लेकिन उन्हें तो इस तरह का सङ्कोच रत्ती भर भी नहीं है।

इसी से वे चारों ओर इसकी चर्चा करने और धूम मचाने लगे। कहने लगे कि मेरी बहन में जब कोई दोष नहीं है, माँ ने जब उसका दुबारा व्याह किया ही नहीं, तब फिर वे (वृन्दावन) क्यों न उसको ग्रहण करेंगे, क्यों फिर व्याह करेंगे, और नन्द काका ही कैसे उनके साथ अपनी लड़की का व्याह करने पावेंगे?

लज्जा के मारे कुसुम के रोएँ खड़े हो गये। उसने कहा—छी-छी! अच्छा, फिर क्या हुआ?

व्रजेश्वरी ने कहा—इसके बाद और कुछ नहीं हुआ। मेरी माँ और नन्द काका की औरत, दोनों एक ही गाँव की लड़की हैं। क्रोध, दुःख, लज्जा और अभिमान के मारे माँ तुमको यहाँ ले आईं। नन्द काका के लड़के के साथ ही तो तुम्हारी कण्ठीबदलौवल की बातचीत हुई थी, लेकिन फिर होने नहीं पाई।—अच्छा ननदजी, ननदोईजी तो ख़ुद अपने कानों से सब हाल सुन गये हैं। उन्होंने भी क्या किसी बहाने तुम्हें कुछ नहीं बतलाया? पहले तो मैंने सुना था कि तुम्हारे पीछे वे—

कुसुम ने मुँह फेरकर कहा—भौजी, उस दिन शायद वे यही सब हाल कहने आये थे।

व्रजेश्वरी ने विस्मित होकर पूछा—किस दिन? क्या अभी हाल ही में आये थे?

कुसुम—हाँ, जिस दिन मैं यहाँ आई उसी दिन सवेरे।

व्रजेश्वरी—फिर क्या हुआ?

कुसुम—मेरे बुरे व्यवहार से वे बिना कुछ कहे-सुने ही चले गये।

व्रजेश्वरी ने मुसकिराकर कहा—क्या किया था? अपने कुञ्ज-भवन में नहीं घुसने दिया? बात नहीं की?

कुसुम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लम्बी साँस छोड़कर गरदन झुकाये बैठी रही। व्रजेश्वरी ने भी और कोई प्रश्न नहीं किया। सन्ध्याकाल का अँधेरा घना होता आ रहा था। चारों ओर शङ्ख-घण्टा आदि बजने के शब्द से व्रजेश्वरी चौंककर उठ खड़ी हुई, और बोली—तुम ज़रा बैठो बहन, मैं दिया जलाकर सँझबाती दे आऊँ।

कुछ देर बाद लौटकर व्रजेश्वरी ने देखा, कुसुम वहीं पड़ी हुई फूल-फूल कर रो रही है। दीपक को यथास्थान रखकर वह ननद के पास आ बैठी। कुसुम के सिर पर स्नेह से हाथ रखकर, बहुत देर तक चुप रहकर, उसने धीरे-धीरे कहा—सचमुच यह काम तुमने अच्छा नहीं किया ननदजी। तुमने क्या किया था, उनके साथ कैसा व्यवहार किया था, यह अवश्य मैं नहीं जानती, लेकिन जब तुम्हारा मन यह अच्छी तरह जानता है कि तुम कौन हो और वे कौन हैं, तब उनकी आज्ञा के बिना कहीं जाना तुम्हारे लिए उचित न था।

कुसुम ने सिर ऊपर नहीं उठाया, चुपचाप सुनती रही।

व्रजेश्वरी ने कहा—तुम दोनों आदमियों की बातें तुम्हीं लोगों के मुँह से जहाँ तक मैंने सुनी हैं, उनके अनुसार मैं

कहती हूँ कि अगर मैं तुम्हारी जगह, तुम्हारी दशा में, होती तो पैदल जाने की कौन कहे, अगर स्वामी की आज्ञा होती कि रास्ते भर नाक रगड़ते हुए जाना होगा तो मैं वैसा करने में भी उज्र न करती।

कुसुम ने पहले ही की तरह पड़े रहकर अब की अस्पष्ट स्वर में कहा—भौजी, मुँह से कहना सहज है, मगर कर दिखाना बहुत कठिन है।

ब्रजे०--बिलकुल नहीं। वहाँ जाने से स्वामी मिलेगा, लड़का मिलेगा, स्वामी का अन्न मिलेगा, इतने बड़े लाभ की सम्भावना देखकर, उसके आगे स्त्री के लिए कोई काम कठिन नहीं हो सकता। मैं अगर यह कुछ भी न पाती तो भी वहाँ से लौट न आती, दुतकारने पर भी नहीं। मार-पीट तो कर सकते ही नहीं; फिर डर क्या था? बहुत करते, कहते—"तुम जाओ।" तब मैं भी कह देती—"तुम जाओ।" ज़बर-दस्ती रहने पर, टाले से भी न टलने पर वे क्या करते!

उसकी बातें सुनकर कुसुम को इतने दुख में भी हँसी आ गई।

किन्तु ब्रजेश्वरी ने इस हँसी में साथ नहीं दिया। वह अपने मन की बात ही कह रही थी। उसने हँसाने या सान्त्वना देने के लिए कुछ नहीं कहा था। उसने और भी अधिक गम्भीर होकर कहा--सच कहती हूँ ननदजी, किसी का मना किया न मानो, उनके पास जाओ। ऐसी विपत्ति के दिनों में स्वामी और पुत्र को अकेला मत छोड़ रक्खो।

ब्रजेश्वरी के इस अकस्मात् कण्ठ-स्वर के परिवर्तन के साथ 'विपत्ति' शब्द सुनकर कुसुम सब भूल गई। वह सिटपिटा कर तेज़ी से उठ बैठी, और बोली--विपत्ति के दिन कैसे?

ब्रजेश्वरी ने कहा—विपत्ति के दिन नहीं तो और क्या! तुम्हारे घर के लोग ज़रूर कुशल से हैं, मगर बाड़ल गाँव में हैज़े ने आफ़त मचा रक्खी है। तुम्हारे दादा अभी कहते थे कि आजकल हैज़े का ज़ोर बहुत बढ़ रहा है, वहाँ रोज़ दस-बारह मौतें होती हैं।—छी-छी! यह क्या करती हो ननदजी! मेरे पैर न छुओ—

ब्रजेश्वरी के पैर पकड़कर कुसुम रोने लगी। बोली--भौजी, मेरे चरन को वे मुझे सौंपने आये थे, मैंने उसे नहीं रक्खा, मैंने कुछ नहीं सुना भौजी—

ब्रजेश्वरी ने बीच ही में रोककर कहा—ख़ैर, अब तो सुन लिया! अभी जाकर उसे ले लो!

कुसुम ने असहाय भाव से कहा—जाऊँ किस तरह?

ब्रजेश्वरी कुछ कहना ही चाहती थी, लेकिन एकाएक पीछे आहट पाकर गरदन घुमाई तो देखा, उसकी माँ किवाड़े खोलकर चौखट के उधर खड़ी हुई है। आँखें चार होते ही तीखे स्वर में ताने के तौर पर उसने पूछा—ननदजी को क्या सलाह दी जा रही है, ज़रा मैं भी तो सुनूँ?

ब्रजेश्वरी ने उत्तेजित न होकर स्वाभाविक स्वर में ही कहा—अच्छा तो है माँ, भीतर आओ, कहती हूँ। मगर

तुम्हारे डरने का कोई कारण नहीं है माँ, अपने आदमी को कोई बुरी सलाह नहीं देता, मैं भी नहीं देती।

माँ बहुत देर से भीतर ही भीतर जलकर ख़ाक हो रही थी। बेटी की इस बात से एकदम जल-भुनकर उसने कहा—इसका मतलब तो यह हुआ कि मैं लोगों को बुरी सलाह दिया करती हूँ, क्यों न? मैंने तभी समझ लिया था कि इस कलमुँही का पैरा जब यहाँ आया है, तब यह इस घर को भी मिटाये बिना न रहेगी। कुछ क्या योंही इसे फूटी आँखों नहीं देख सकता—इसके ढङ्ग ही ऐसे हैं!

बेटी भी इसके उत्तर में कुछ ऐसा ही कड़ा जवाब देने को तैयार थी लेकिन कुसुम ने ज़ोर से चिमटी काटकर उसे रोक दिया। ब्रजेश्वरी ने शान्त होकर, अपने को सँभालकर कहा—इसी लिए तो इस कलमुँही से कह रही थी कि जा, अपनी ससुराल में जाकर रह, यहाँ न रहना।

ससुराल का नाम सुनकर माँ ने ताम्बूल-राग-रञ्जित ओठ विचकाकर और तिलक-चन्दन-चर्चित नासिका सिकोड़कर कहा—किस ससुराल में ननद को भेजती है तू? नन्दा वैरागी के—

अब की ब्रजेश्वरी से न रहा गया। उसने झिड़ककर कहा—देखो, सब जान-सुनकर भी अनजान बनकर नाहक़ किसी का अपमान न करो। स्त्री की ससुरालें दस-बीस नहीं हुआ करतीं कि आज नन्द वैरागी का नाम लोगी, कल अपने

गोवर्द्धन के बाप का नाम लोगी और वही सबको चुपचाप सुनना पड़ेगा।

बेटी के इस स्पष्ट, सत्य, निष्ठुर इशारे से माँ बारूद के पीपे की तरह फटकर चिल्लाकर कह उठी—अभागी, बेटी होकर तू अपनी माँ के नाम इतनी बड़ी तोहमत लगाती है!

लड़की ने कहा—तोहमत होती तो अच्छा ही न होता, यह तो बिलकुल सच बात है माँ। सच कहती हूँ माँ, तुम जैसी दो-एक वैष्णव-समाज की स्त्रियों की करतूत से ही जी चाहता है कि मैं अपने को भङ्गी-चमार कहने लगूँ सो भी अच्छा; अपने को वैष्णव-जाति की लड़की कहते तो शर्म के मारे सिर नीचा हो जाता है।—ठहरो, गुल-गपाड़ा न करो। अगर मेरे इस कहने को तोहमत समझकर तुम्हें दुख हुआ हो तो ननदजी को पहले बाड़ल भेज दो, उसके बाद तुम्हारे मुँह में जो आवे वही कहकर मुझे जी भरकर गालियाँ दे लेना। मैं तुम्हारी ही क़सम खाकर कहती हूँ माँ, मैं चूँ नहीं करूँगी।

माँ ने समझ लिया कि बेटी के तीक्ष्ण वचन-बाणों के सामने ठहरने से यह युद्ध और अधिक दूर तक अग्रसर होने पर उसी की हार होगी। इसी लिए कण्ठ-स्वर को कुछ नरम करके उसने कहा—"वहाँ भेज देने से ही क्या होगा? वे लोग इसे घर में रखना कभी नहीं मंजूर करेंगे। व्रजेश्वरी, इस मामले को तेरी अपेक्षा मैं बहुत अधिक जानती हूँ। वे लोग इसके कोई नहीं हैं। वृन्दावन के साथ कुसुम का कोई

सम्बन्ध नहीं। झूठी आशा देकर इसे तू नचाती न फिर।" यह कहकर प्रत्युत्तर सुने बिना ही वह तेज़ी के साथ वहाँ से चल दी।

कुसुम ने सूखे हुए मलिन मुख को जैसे ऊपर उठाकर देखा वैसे ही व्रजेश्वरी ने ज़ोर देकर कहा—"झूठ बात है बहन, सब झूठ है। माँ जान-बूझकर यह झूठ बोल गई हैं। मैं उनकी बेटी होकर भी तुम्हारे आगे यह मानती हूँ। अच्छा ठहरो, अभी मैं आती हूँ"—इतना कहकर न जाने क्या सोचकर व्रजेश्वरी झपटती हुई वहाँ से चली गई।

अच्छी दशा होने पर बुद्धि भी सुधर जाती है, इसको कुञ्ज ने सत्य प्रमाणित कर दिखाया। पत्नी और बहन का सम्मिलित अनुरोध और आवेदन-निवेदन भी उसे कर्तव्य से विचलित न कर सका। उसने सिर हिलाकर कहा—यह हो ही नहीं सकता; माँ की आज्ञा पाये बिना मैं चरन को यहाँ नहीं ला सकता।

व्रजेश्वरी ने कहा—अच्छा, कम से कम इतना तो करो कि एक बार जाकर देख ही आओ, वे लोग कैसे हैं, वहाँ का क्या हाल है?

कुञ्ज ने कपार पर आँखें चढ़ाकर कहा—बाप रे बाप! दस-बीस आदमी वहाँ रोज़ मरते हैं!

व्रजेश्वरी ने कहा—तो फिर किसी आदमी ही को वहाँ भेज दो, वही जाकर खबर ले आवे।

व्रजेश्वरी ने रोते-रोते कहा—मैं नहीं जानती। मैं घर के भीतर, वाहर, वाग़ में, तालाव में, सभी जगह ढूँढ आई; कहीं उनका पता नहीं लगता।

स्त्री के रोने-धोने और तालाव का उल्लेख करने से कुञ्ज घबराकर रोने लगा। उसने चिल्लाकर कहा—तो अब वह ज़िन्दा नहीं है। माँ की झिड़कियाँ न सह सकने के कारण अवश्य वह तालाव में डूब मरी है।

इतना कहकर दौड़ता हुआ वह वाहर जाने लगा। व्रजेश्वरी ने उसकी धोती का खूँट पकड़कर कहा—सुनो, सुनो, इस तरह कहाँ जाते हो—

"मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता!" कहकर एक झटके से धोती का सिरा छुड़ाकर कुञ्ज पागल की तरह वाहर चला गया।

लगभग दस मिनट बीतने पर औरतों की तरह ऊँचे स्वर से रोते-रोते लौटकर कुञ्ज आँगन में आ गया। उसने चिल्ला-चिल्लाकर कहना शुरू किया—माँ ने मेरी बहन को मार डाला रे! अब मैं नहीं रहूँगा, अब इस घर में पैर नहीं रक्खूँगा! अरे मेरी कुसुम रे!—इत्यादि।

कुञ्ज की सास यह कुछ भी हाल जानती न थी। चिल्लाहट सुनकर वह कोठरी के बाहर आकर सन्नाटे में आ गई।

उसको देखते ही कुञ्ज वहीं लेटकर ज़ोर-ज़ोर सिर पटकता हुआ कहने लगा—इसी राक्षसी ने मेरी छोटी बहन

को खा डाला—हायरे, मैं यहाँ मरने क्यों आया था ! अरे, मेरा कैसा सर्वनाश हो गया रे !

व्रजेश्वरी ने पास आकर हाथ पकड़कर जैसे उसे उठाना चाहा वैसे ही उसने उसको धक्का मारकर गिरा दिया। बोला—दूर हो, दूर हो, मुझे न छूना ! मुझे न छूना !

व्रजेश्वरी उठकर खड़ी हो गई। अब की वह ज़बरदस्ती कुञ्ज को अपनी कोठरी में ले गई, और कहने लगीं—इस तरह खाली रोने-चिल्लाने से क्या तुम अपनी बहन को पा जाओगे ? मैं,कहती हूँ, वे कभी नहीं डूब मरीं।

कुञ्ज ने इस पर विश्वास नहीं किया। वह वैसे ही रोता रहा। इस बहन को उसने बड़े-बड़े दुःख-कष्ट सहकर पाला था, और वह उसे सचमुच प्राण से बढ़कर चाहता था। पहले अनेक बार कुसुम गुस्सा करके पानी में डूबने की धमकी दे चुकी थी। इसी से इस समय कुञ्ज की आँखों के आगे पानी और उस पर उतरा रही उसकी अभिमानिनी बहन की लाश नाचने लगी।

व्रजेश्वरी ने स्नेहपूर्वक स्वामी के आँसू पोंछकर कहा—तुम अपनी घबराहट दूर करो,—मुझे विश्वास है कि वे कभी नहीं मरीं।

कुञ्ज के मुँह से कोई बात न निकली। वह स्त्री के मुख की ओर ताकता रहा।

उसकी स्त्री ने फिर एक बार अच्छी तरह आँचल से उसके आँसू पोंछकर कहा—मुझे भरोसा है कि ननदजी चोरी से बाड़ल चली गई हैं।

कुञ्ज ने अविश्वास करके सिर हिलाकर कहा—ना, ना, वहाँ पर वह कभी नहीं जायगी। वह चरन के सिवा वहाँ के और किसी को देख न सकती थी।

व्रजेश्वरी ने कहा—यह तुम लोगों की बड़ी भारी भूल है। मैं जैसे तुमको प्यार करती हूँ वैसे ही वे भी अपने स्वामी को प्यार करती हैं। इसके सिवा वे चरन के लिए भी तो जा सकती हैं!

कुञ्ज ने कहा—लेकिन वह तो वाड़ल की राह ही नहीं जानती!

व्रजेश्वरी ने कहा—इसी का मुझे डर है कि राह भूलकर कहीं और न चली जायँ; या पहुँचने में देर न हो; अथवा राह में किसी आफ़त में न फँस जायँ; नहीं तो वाड़ल यहाँ से सात समुद्र तेरह नदी पार होने पर भी वे एक-न-एक दिन पूछते-पूछते अवश्य वहाँ जा पहुँचेंगी। मेरी बात सुनो, तुम भी उसी राह पर जाओ। अगर राह में मिल जायँ तो साथ ले जाकर उन्हें उनके स्वामी को सौंपकर लौट आओ।

"अच्छा, जाता हूँ" कहकर कुञ्ज उठ खड़ा हुआ।

आज उसके चमचमा रहे विलायती जूते, क़ीमती रेशमी चादर और आसमान को छू रही अभिमान-भरी ज़मींदारी की चाल और ठाट-बाट, सब कुछ, घर में ही पड़ा रहा। 'कल-मुँही कुसी' (कुसुम का संक्षिप्त आदर का नाम) के शोक से ज़मींदार कुञ्जनाथ बाबू—फेरीवाले कुञ्ज बोष्टम के साज से—

नंगे पैरों, नंगे बदन, पागल की तरह दौड़ते हुए रास्ते में जा रहे थे।

१४

वृन्दावन की माता को स्वर्गवासी हुए छः दिन हो गये। मृत्यु के उपरान्त अगर कोई अपने पुण्य के बल से स्वर्ग में जाने का अधिकार पाता होगा तो निश्चय से कहा जा सकता है कि वे स्वर्गवासिनी हुई होंगी।

उस दिन तारिणी मुखर्जी के दुर्व्यवहार और घोषाल महाशय के शास्त्रज्ञान तथा शाप से अत्यन्त पीड़ित होकर वृन्दावन ने गाँव के भीतर आधुनिक ढंग का एक लोहे का नल-कूप बनवाने का सङ्कल्प किया था, जिसके पानी को किसी तरह कोई दूषित न कर सकेगा, और सामान्य परिश्रम करके जिससे पानी ले जाकर गाँववाले अपनी आवश्यकता दूर कर सकेंगे, तथा बुरे समय में महामारी फैलने का भय न रहेगा। ऐसा बहुत बड़ा पूर्वोक्त प्रकार का कुआँ तैयार कराने में चाहे जितना ख़र्च हो, उसे बनाना ही होगा। इस अभिप्राय से वृन्दावन ने कलकत्ते के किसी प्रसिद्ध कल-कारख़ाने के फ़र्म को एक पत्र लिखा था। कम्पनी ने भी सब देख-सुनकर लागत का हिसाब तैयार करने के लिए अपना एक आदमी भेज दिया था। जिस दिन वृन्दावन की माँ मरीं उस दिन सवेरे वृन्दावन बैठा हुआ उसी आदमी से बातचीत करके एक शर्तनामा तैयार कर रहा था। दस बजे के लगभग

दासी घबराई हुई आकर बोली—बाबूजी, इतना दिन चढ़ आया, मगर अभी तक अम्मा दरवाज़ा खोलकर कोठरी के बाहर नहीं निकलीं !

वृन्दावन ने शङ्कित होकर पूछा—माँ क्या अभी तक सो रही हैं ?

दासी ने कहा—हाँ बाबूजी, दरवाज़ा भीतर से बन्द है। वे पुकारने से भी नहीं बोलतीं।

वृन्दावन व्याकुल होकर दौड़ा हुआ भीतर आया, और किवाड़ों में बार-बार धक्का देकर पुकारने लगा—अम्मा, अम्मा, ओ अम्मा !

कोई उत्तर न मिला। घर के सब लोग मिलकर चिल्लाने और पुकारने लगे, तो भी भीतर से उत्तर न मिला। तब लोहे के साबल से बन्द दरवाज़ा किसी तरह खोला गया। दरवाज़ा खुलते ही भीतर से भयानक दुर्गन्ध ने निकलकर जैसे थप्पड़ मारकर सबके मुँह फेर दिये। उस धक्के को तत्काल सँभालकर वृन्दावन भीतर घुस गया।

पलँग ख़ाली पड़ा था। माँ ज़मीन पर पड़ी हुई थीं—मरने में अधिक देर न थी। कोठरी भर में हैज़े के भयानक आक्रमण के चिह्न मौजूद थे। जब तक उनमें उठने की शक्ति रही तब तक उठकर बाहर आईं; अन्त को अशक्त, असहाय अवस्था में वहीं गिर पड़ीं, और क़य-दस्त होते रहे। ज़मीन पर गिरने के बाद फिर वे उठ नहीं सकीं, वहीं पड़ी

रहीं। जीवन में कभी किसी को वे अपने लिए रत्ती भर भी क्लेश नहीं देना चाहती थीं। इसी से मृत्यु के मुख में पड़कर भी इतनी रात को किसी को पुकारने और जगाने में उनको लज्जा लगी। रात भर उनपर क्या बीती, यह किसी को बतलाने की ज़रूरत नहीं थी। माता की अकस्मात् ऐसी शोचनीय मृत्यु आँखों से देखकर सहन करना मनुष्य के लिए असम्भव है। वृन्दावन भी न सह सका। तथापि अपने को सँभाले रखने के लिए उसने एक बार प्राणपण से चौखट पकड़ ली; लेकिन उसी दम अचेत होकर वह माता के पैरों के पास गिर पड़ा। लोग उसे पकड़कर बाहर उठा लाये। कोई बीस मिनट में होश आने पर उसने देखा, उसके मुँह के पास बैठा हुआ चरन रो रहा है। वृन्दावन उठ बैठा, और लड़के का हाथ पकड़-कर मृतप्राय माता के पैरों के पास आकर चुपचाप बैठ गया।

जो आदमी डाक्टर को बुलाने गया था वह लौट आया, और बोला—डाक्टर साहब नहीं हैं, कहीं गये हैं, दिन को लौटने की आशा नहीं।

माता का गला बिलकुल रुँध गया था, बोल न सकती थीं; लेकिन ज्ञान बना हुआ था। पुत्र और पोते को पास पाकर उनके ज्योति-हीन नेत्रों के किनारों से गरम आँसू गिर पड़े। उन्होंने दोनों ओंठ बार-बार हिलाकर दास-दासी तक सभी को आशीर्वाद दिया। उनका आशीर्वाद किसी के कानों में नहीं गया, लेकिन हृदय में सभी के पहुँचा।

अब तुलसी-चौरा के पास बिस्तर बिछाकर वे लिटा दी गई। बहुत देर तक वे तुलसी-वृक्ष की ओर ताकती रहीं। इसके बाद उनके मलिन और थके हुए दोनों नेत्र संसार की अन्तिम निद्रा में सदा के लिए धीरे-धीरे बन्द हो गये।

इसके बाद वृन्दावन के छः दिन और छः रातें किस तरह कटीं, यह बताना कठिन है। बात भगवान् के हाथ की थी, इसी से इतना समय बीत गया; अगर उसके अपने हाथ की बात होती तो शायद इतना समय बीतना मोहाल हो जाता।

किन्तु चरन का हाल बुरा था। वह न अब खेलता है, और न किसी से बोलता-चालता है। वृन्दावन ने चरन को तरह-तरह के क़ीमती खेलौने—अनेक आकार-प्रकार की कल-दार गाड़ियाँ, अगिनबोट-जहाज़ पशु-पक्षियों के चित्र आदि—ख़रीद दिये थे। पहले वह उन्हीं में हर घड़ी उलझा रहता था। वे ही खेलौने अब इधर-उधर पड़े हुए थे, चरन उन्हें हाथ से छूता भी न था।

उस विपत्ति के समय में इस बच्चे की ख़बर लेनेवाला कौन था? किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। चरन की दादी को जिस समय लोग नये कपड़े से लपेटकर रथी पर लिटाकर डरावनी 'हरिबोल' की ध्वनि करते हुए उठाकर ले चले थे उस समय वह पास ही खड़ा हुआ आँखें फाड़-फाड़कर इस अज्ञात अद्‌भुत कार्य को देखा किया था।

चरन के मन में तरह-तरह के प्रश्न उठ रहे थे। दादी उसे अपने साथ क्यों नहीं ले गई ? इसके सिवा, वे बैल-गाड़ी के बदले आदमियों के कन्धे पर, इस तरह सिर से पैर तक ढककर, चुपचाप लेटी हुई, क्यों और कहाँ जा रही हैं ? बप्पा इतना रोते क्यों हैं ? उस समय चरन की हताश, विह्वल, विषाद-भरी मूर्ति ने सबकी दृष्टि—केवल उसके पिता को छोड़ कर—अपनी ओर खींची। माँ की ऐसी शोचनीय अचानक मौत ने वृन्दावन पर इतना प्रभाव डाला था, उसकी चेतना को इस प्रकार अभिभूत कर दिया था कि किसी ओर ध्यान देने की, सोचने या समझने की शक्ति ही उस समय उसमें न थी। उसकी उदास, उद्भ्रान्त, शून्य दृष्टि सामने आनेवाली वस्तु या व्यक्ति का अनुभव ही जैसे न कर पाती थी। वह जैसे अपने आपे ही में न था।

इधर पाँच-छः दिनों से नित्य सन्ध्या के समय वृन्दावन के पास दुर्गादास बाबू आकर बैठा करते थे। दुर्गादास बाबू से उसने शिक्षा प्राप्त की थी। दुर्गाबाबू तरह-तरह की ज्ञान की बातें और उपदेश सुनाकर उसे आश्वासन दिया करते थे। वृन्दावन चुपचाप सब सुन लेता था सही, लेकिन उसका हृदय उसमें से कुछ भी ग्रहण न कर पाता था, अर्थात् मन न मानता था, शोक न कम होता था। क्योंकि उसके अन्तः-करण में इस प्रकार की धारणा ने जड़ जमा ली थी कि अकस्मात् अपार विपत्ति-सागर के भीतर मँझधार में उसके

जीवनरूपी जहाज़ की पेंदी फट गई है; हज़ार कोशिश करने पर भी यह टूटा जहाज़ बन्दरगाह के किनारे नहीं पहुँचाया जा सकता। इसका अन्तिम परिणाम समुद्र के बीच डूबना ही निश्चित है, उसके बचाव के लिए व्यर्थ हाथ-पैर पटकने से क्या लाभ! ऐसा न बदा होता तो उसकी ऐसी अच्छी सुशीला स्त्री ही क्यों इतनी थोड़ी आयु में चरन को छोड़कर स्वर्ग सिधार जाती, ऐसे सङ्कट के समय कुसुम भी क्यों ममता भुला देती, उसे दया क्यों न आती, वह ऐसी निठुर कठोर होकर चरन को क्यों लौटा देती! सबसे बढ़कर दुर्भाग्य तो उसकी माँ का यों अचानक मृत्यु के मुख में चला जाना है! ऐसी माँ किसे नसीब होती है? वह भी जैसे अपनी इच्छा से ही चल बसीं—जाते समय कुछ कहा-सुना भी नहीं।

इस तरह जब वृन्दावन के अस्त-व्यस्त हो रहे मस्तिष्क में विधाता की बुरी इच्छा नित्य स्पष्ट से भी स्पष्टतर होकर दिखाई देने लगी, उसी समय एक दिन घर की पुरानी दासी ने रुआसी होकर उलहना देते हुए कहा—बाबूजी, क्या आख़िर को लड़के से भी हाथ धोना पड़ेगा? दिन-दिन भर बीत जाता है, तुम उसे एक दफ़े भी अपने पास नहीं बुलाते, बात नहीं करते, प्यार नहीं करते, यह क्या बात है? ज़रा देखो तो, लड़का क्या हो गया है!

दासी की बातों ने लाठी की तरह वृन्दावन के मस्तक पर आघात करके उसके शोक-जनित मोह को मिटा दिया। उसने चौंककर कहा—चरन को क्या हुआ? अयँ!

दासी ने अप्रतिभ होकर कहा—उसकी हज़ार बरस की उमर हो, उसे हुआ कुछ भी नहीं।—आओ भैया, आओ तो, तुमको बाबूजी बुला रहे हैं।

अत्यन्त सङ्कोच के साथ धीरे-धीरे पैर रखता हुआ चरन आड़ से आकर वृन्दावन के आगे खड़ा हुआ। वृन्दावन ने तुरन्त उसे छाती से चिमटा लिया। फिर वह एकाएक रो उठा, और बोला—बेटा चरन, तू भी क्या मुझे छोड़कर चल देगा रे!

दासी ने झिड़ककर कहा—छी! बाबूजी! आप यह क्या बक रहे हैं!

वृन्दावन लज्जित हो गया। उसने आँसू पोंछकर आज कई दिन बाद एक बार हँसने की चेष्टा की।

दासी अपने काम से चली गई। चरन ने चुपके से बाप के मुँह के पास मुँह ले जाकर कहा—माँ के पास जाऊँगा बप्पा।

वृन्दावन ने सोचा, यही बड़ी ख़ैर हुई जो दादी के पास जाने को तैयार नहीं हुआ। उसने प्यार करके कहा—तुम्हारी माँ तो घर में हैं नहीं चरन।

चरन—कब आवेंगी?

वृन्दा०—यह तो मुझे मालूम नहीं है बेटा। अच्छा, मैं आज ही आदमी भेजकर ख़बर मँगाता हूँ।

चरन ख़ुश हो उठा। बहुत सोच-विचार करने के बाद उसी दिन वृन्दावन ने अपने बाल्य-बन्धु केशव को चिट्ठी लिख दी कि वह आकर चरन को अपने पास ले जाय।

माँ की तेरहीं होने को दो ही दिन बाक़ी थे। सबेरे के पहर वृन्दावन चण्डीमण्डप में चबूतरे पर बैठा कुछ काम कर रहा था, इसी समय ख़बर मिली कि चरन क़य कर रहा है, दस्त भी हो गया है। वृन्दावन बेतहाशा दौड़ता हुआ भीतर पहुँचा। देखा, चरन मुर्दे की तरह बिस्तर पर पड़ा है। उसके क़य-दस्त साफ़ हैज़े का हमला सूचित कर रहे हैं।

वृन्दावन को चक्कर आ गया, आँखों के आगे अँधेरा छा गया। जान पड़ा, सामने का सारा जगत् गहरे काले रङ्ग के परदे से ढक गया। हाथ-पैरों में जैसे जान नहीं रही। "ज़रा केशव को बुलाओ तो" इतना कहकर वह लड़के की खाट के नीचे ज़मीन ही पर मुर्दे की तरह लेट गया।

घण्टे भर के उपरान्त गोपाल डाक्टर की बैठक में उसके दोनों पैर पकड़े हुए व्याकुल, विह्वल वृन्दावन पड़ा हुआ था। उसने दीन स्वर में कहा—डाक्टर साहब, मेरे लड़के को बचाइए! मेरा अपराध चाहे जितना भारी हो, वह बच्चा तो बिलकुल बेक़सूर है। निरा बच्चा है डाक्टर बाबू, एक बार चलकर उसे देख लीजिए, उसका इलाज कीजिए। उसका कष्ट देखकर आपको भी तरस आ जायगा।

गोपाल ने मुँह बनाकर रुखाई के साथ कहा—उस समय न सोचा था कि तारिणी महराज इन्हीं डाक्टर साहब के मामा हैं? नीच जाति होकर रुपये के घमण्ड से ब्राह्मण का अपमान किया! उस समय नहीं सोचा था कि इन्हीं पैरों पर सिर रखना पड़ेगा!

वृन्दावन ने रोकर कहा—आप ब्राह्मण हैं, आपके पैर छूकर कहता हूँ, मैंने आपके मामा का ज़रा भी अपमान नहीं किया। पानी ख़राब न करने के लिए बेशक मैंने उनसे कहा था। वह भी अपने लिए नहीं, सारे गाँव की भलाई के विचार से। आप तो डाक्टर हैं, आप को तो मालूम है कि ऐसी भयानक महामारी के समय पीने का पानी दूषित करना कितना बुरा और अनुचित है!

गोपाल ने पैर छुड़ाकर कहा—बुरा क्यों नहीं है, अनुचित क्यों नहीं है! मामा ने बड़ा भारी अन्याय किया था—बेशक-बेशक! तुमने दुर्गादास से दो पन्ने अँगरेज़ी के क्या पढ़ लिये जग जीत लिया! मुझे उपदेश देने आये हो! इतने बड़े तालाब में दो कपड़े छाँटने से पानी ख़राब हो जाता! मैं दूधपीता बच्चा हूँ न, जो यह मान लूँगा! यह और कुछ नहीं, सिर्फ़ रुपये की गर्मी है! नीच जाति के पास रुपये होने से ऐसा ही होता है! नहीं तो तुम्हारी इतनी मजाल थी कि तुम ब्राह्मण का पानी लेना, नहाना बन्द करने को तैयार होते! इतना घमण्ड, इतना अहङ्कार! जाओ, जाओ—मैं तुम्हारे घर में पैर न रक्खूँगा।

लड़के के लिए वृन्दावन बेहद बेचैन और व्याकुल हो रहा था। उसका कलेजा फटा जा रहा था। उसने फिर डाक्टर के पैर पकड़कर विनती करते हुए कहना शुरू किया—मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ, कान पकड़ता हूँ। आपके

पैरों पर सिर रखकर क्षमा-प्रार्थना करता हूँ—डाक्टर साहब! ज़रा चले चलिए, एक बार देख लीजिए! लड़के की जान बचाइए। पुण्य होगा। अगर रुपये-पैसे की बात हो तो मैं सौ रुपये—दो सौ रुपये—पाँच सौ रुपये, जो आप माँगें, देने को तैयार हूँ। डाक्टर साहब, चलिए, चलकर दवा दीजिए।

डाक्टर ने मन में कहा, पाँच सौ रुपये! लोभ ने उसे विचलित कर दिया।

गोपाल ने नरम होकर कहा—तुमको मालूम नहीं है, खुलासा हाल सुन लो। तुम्हारे घर जाने से मुझे जातिच्युत होना पड़ेगा। अभी-अभी वे लोग आये थे। ना बाबा, तारिणी मामा की अनुमति मिले बिना अगर जाऊँगा तो गाँव भर के ब्राह्मण मुझे जाति से अलग कर देंगे। नहीं तो मुझे क्या आर थी? मैं डाक्टर ठहरा, रुपये लूँगा, और दवा दूँगा। यही मेरा काम है। लेकिन इस मामले में यह होने का नहीं। तुम्हारे घर चिकित्सा करने जाऊँ तो फिर अपने लड़के का जनेऊ-ब्याह और लड़की की सगाई किस तरह करूँगा भैया? उस घड़ी तो तुम काम न आओगे। बिरादरीवाले विरुद्ध हो जायँगे तो मैं किसी काम का न रह जाऊँगा।—बल्कि मैं बताऊँ, तुम एक काम करो। घोपाल काका को साथ लेकर मामा के पास चले जाओ, और उन्हें मनाओ। घोपाल पुरनिया आदमी हैं। उनकी बात कोई नहीं टाल सकता। मामा और घोपाल काका एक दफ़े मुँह से

कह भर दें, बस, मैं—आज कल कलकत्ते से अच्छी-अच्छी बढ़िया ताज़ो दवाएँ लाया हूँ—एक दफ़े दवा देकर ही चङ्गा कर दूँगा। जाओ।

वृन्दावन विह्वल दृष्टि से डाकृर के मुँह को ताकता रहा। गोपाल ने भरोसा देकर फिर कहा—डर नहीं है लड़के, जाओ; अब देर न करो।—और देखो भैया, मेरे रुपयों का ज़िक्र वहाँ करने की ज़रूरत नहीं। जाओ, दौड़ते जाओ।

वृन्दावन रोता हुआ उल्टे पैरों आकर तारिणी के श्रीचरणों में गिर पड़ा।

तारिणी ने लात मारकर वृन्दावन को पीछे हटा दिया, और पैशाचिक क्रूर हँसी हँसते हुए कहा—मैं सन्ध्या-पूजा किये विना पानी नहीं पीता। क्यों, मेरा कहा कैसा फला! वंश-नाश हुआ कि नहीं!

वृन्दावन का विलख-विलखकर रोना सुनकर तारिणी की स्त्री भीतर से निकल आई। वह भी रो पड़ी। उसने स्वामी से कहा—छी-छी! ऐसा अधर्म का काम न करो। जो होने वाला था वह हो गया—हाय, ज़रा-सा बच्चा है—कह दो गोपाल से, दवा दे दे।

तारिणी ने क्रोधित बन्दर का सा मुँह बनाकर घुड़ककर कहा—तू जा यहाँ से हरामज़ादी! मर्दों की बातों में न बोल।

स्त्री ने सकपकाकर वृन्दावन से कहा—मैं आशीर्वाद देती हूँ भैया, तुम्हारे बच्चे को आराम हो जायगा।

तो पुकार लेना। और एक बात है भाई। सब समाप्त होने के पहले ही मुझे ख़बर ज़रूर देना, जिसमें और एक बार देख लूँ।

अब उस कोठरी से वृन्दावन चल दिया।

वृन्दावन ने जब ठाकुरद्वारे में प्रवेश किया तब झुटपुटा हो चुका था। उसने दाहनी ओर नज़र डाली, इसी जगह बैठ कर माँ जप किया करती थीं। अचानक उस दिन की बात याद आ गई जिस दिन वह सबको साथ लेकर कुञ्जनाथ के घर दावत खाने गया था, जिस दिन उसकी माँ कुसुम को कड़े पहनाकर आशीर्वाद देकर लौटने पर इसी जगह चरन को लिये बैठी थीं, और वह ख़ुद आनन्द के मारे उन्मत्त हो रहे हृदय की असीम कृतज्ञता ठाकुरजी के चरणों में जताने को चुपके-चुपके उपस्थित हुआ था। और आज, वह क्या निवेदन करने के लिए इस स्थान में आया है? वृन्दावन पृथ्वी पर लोटकर कहने लगा—पास ही की कोठरी में पड़ा मेरा चरन मर रहा है। भगवन्, मैं इसके लिए उलहना देने नहीं आया, लेकिन पिता का स्नेह अगर तुम्हीं ने दिया है, तो फिर पिता की आँखों के आगे, बिना चिकित्सा के, इस तरह निष्ठुर भाव से उसकी एकमात्र सन्तान की हत्या क्यों की? पिता के हृदय में किञ्चिन्मात्र सान्त्वना की राह क्यों न खोल रक्खी?

वृन्दावन को स्मरण हो आई वही बहुत लोगों के मुँह से बहुत बार निकली हुई पुरानी बात कि "भगवान् जो कुछ

करते हैं, सब भलाई ही के लिए करते हैं!" उसने मन ही मन कहा—प्रभो, जो लोग तुम पर विश्वास नहीं करते उनकी बात वे ही जानें, किन्तु मैं तो निश्चय के साथ जानता और मानता हूँ कि तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ती तक नहीं हिलती। इसी से आज केवल इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि हे जगदीश्वर, मुझे समझा दो कि इस बालक की मृत्यु में तुमने कौन सी भलाई छिपा रक्खी है? मेरे इस नन्हे से पुत्र, इस रत्ती भर के चरन की मृत्यु से इस विशाल विश्व में किसका क्या उपकार होगा भगवन्?

यद्यपि वृन्दावन अच्छी तरह जानता था कि जगत् की सभी घटनाओं के रहस्य को मनुष्य की बुद्धि नहीं समझ सकती, तथापि वह केवल इसी समस्या पर सारे चित्त को प्राणपण से एकाग्र करके पड़ा रहा कि चरन का जन्म ही क्यों हुआ, वह इतना बड़ा ही क्यों हुआ, और उसे एक भी काम करने का अवसर न देकर इस तरह इतनी जल्दी संसार से उठा ही क्यों लिया गया?—इन्हीं बातों को वह पड़े-पड़े सोचने लगा।

कुछ देर बाद घर के पुरोहित आरती करने के लिए आये। उनके पैरों की आहट से वृन्दावन का ध्यान उचट गया। वह वहाँ से उठ गया। उस समय उसके हृदय की आँधी का वेग शान्त हो गया था। हृदयाकाश में उषःकाल का प्रकाश उस समय तक नहीं फूट पाया था, किन्तु मेघरहित निर्मल

आकाश के नीचे भविष्य जीवन के अस्पष्ट मार्ग की रेखा पहचानी जा सकती थी।

बाहर आकर आँगन के एक किनारे, दरवाज़े की आड़ में, एक मलिन स्त्री-मूर्त्ति देखकर वृन्दावन को कुछ विस्मय हुआ। उसने सोचा, यह कौन, यहाँ इस तरह अँधेरे में, आड़ में बैठा हुआ है!

वृन्दावन ने पास जाकर ज़रा ग़ौर से देखते ही पहचान लिया—वह कुसुम थी। उसकी ज़बान तक यह बात आई कि "क्या मेरा सोलहों आने सुख देखने आई हो कुसुम?" किन्तु उसने कहा नहीं।

अभी-अभी वह अपने चरन की शिशु-आत्मा के कल्याण के लिए अपने सारे सुख-दुःख, मान-अभिमान आदि का विसर्जन कर आया था। इसी कारण नीच प्रतिहिंसा के भाव को प्रश्रय देकर कड़ी और कड़वी बात कहकर मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए बच्चे का अकल्याण करने को उसका जी न चाहा। उसने करुण स्वर में कहा—ज़रा और पहले आ जातीं तो चरन की बड़ी भारी अभिलाषा पूरी हो जाती। आज दिन भर उसे जितनी तकलीफ़ मिली है, जितना वह तड़पा है, उतना ही वह तुम्हारे पास जाने के लिए रोया है। वह तुमको बहुत अधिक चाहता था! किन्तु अब तो उसे होश नहीं है। अच्छा, आओ मेरे साथ।

कुसुम चुपचाप स्वामी के पीछे चली गई। दरवाज़े के पास आकर वृन्दावन ने हाथ से चरन की अन्तिम शय्या दिखा

दो और कहा—चरन वह पड़ा हुआ है, जाओ, उसे अपनी गोद में लो।—केशव, यह चरन की माँ हैं।

वृन्दावन धीरे-धीरे अन्यत्र चला गया।

दूसरे दिन सवेरे कोई जब कुसुम के आगे जाकर बच्चे की लाश देने के लिए कहने का साहस न कर सका, कुञ्जनाथ तक कुसुम का भाव देखकर डर के मारे पीछे हट गया, तब वृन्दावन ने धीरे-धीरे उसके पास जाकर कहा—उसकी लाश इस तरह रोक रखने से क्या लाभ? छोड़ दो, लोगों को ले जाने दो।

कुसुम ने सिर उठाकर कहा—उन लोगों से आने के लिए कह दो। मैं ख़ुद अपने हाथ से उठा दूँगी।

उसके बाद कुसुम ने जिस तरह अविचलित दृढ़ता के साथ चरन की लाश मसान को भेज दी, उसे देखकर वृन्दावन भी मन ही मन डर उठा।

१५

चरन का नन्हा सा शरीर जलकर भस्म होते देर न लगी। केशव उसी ओर ताकते-ताकते अकस्मात् एक भयङ्कर लम्बी साँस छोड़कर चिल्ला उठा—सब झूठ है! जो लोग बात-बात में कहते हैं कि भगवान् जो कुछ करते हैं सो भले के लिए ही, वे सब शैतान हैं, हरामज़ादे हैं, जुआचोर हैं!

वृन्दावन उस समय घुटनों में मुँह छिपाये थोड़ी ही दूर पर चुपचाप सन्नाटे में बैठा था। बहुत ही लाल हो रही और

रोते-रोते थक गई आँखें उठाकर क्षण भर केशव की ओर देखते रहने के उपरान्त उसने कहा—मसान में क्रोध न करना चाहिए केशव !

केवल "ओ" कहकर केशव चुप हो रहा।

लौटकर घर आते समय राह में बाग्दियों (पासियों के समान अस्पृश्य एक बङ्गाल की जाति) के दो-तीन लड़के पेड़ के नीचे खेल रहे थे। वृन्दावन ठिठक गया, और खड़े होकर एकटक उन्हें देखने लगा। लड़के खेलते-खेलते जब दूसरे पेड़ के तले चले गये तब वृन्दावन ने एक साँस छोड़कर अपने मित्र केशव की ओर ताककर कहा—केशव, कल से दिन-रात जो प्रश्न मेरे मन में उठ रहा था उसका उत्तर, जान पड़ता है, इस समय यहाँ मुझे मिल गया। संसार में एक लड़के के मरने का भी कुछ प्रयोजन अवश्य था।

केशव अभी-अभी असह्य कुढ़न के कारण ईश्वर आदि को गालियाँ दे रहा था। अकस्मात् वृन्दावन के मुँह से यह अद्भुत सिद्धान्त सुनकर दङ्ग हो गया।

वृन्दावन ने कहा—तुम्हारे कोई लड़का-बाला नहीं है। इसलिए तुम हज़ार कोशिश करके भी मेरे जी की जलन को न समझ सकोगे, उसका अनुभव न कर सकोगे। यह ऐसी जलन है कि कोई अपने घोर शत्रु के लिए भी यह कामना नहीं करता कि उसे पुत्रशोक हो। किन्तु भैया केशव, इस शोक का भी मूल्य है। इस समय मेरी समझ में आ रहा है

कि इसका बहुत बड़ा मूल्य है। जान पड़ता है, इसी से भगवान् ने मेरे लिए इस की भी व्यवस्था की है।

केशव उसी तरह चुपचाप मित्र के मुँह की ओर ताकता रहा। वृन्दावन ने कहा—मेरे हृदय की वह ज्वाला इन बच्चों की ओर देखने से शान्त हुई जा रही है। आज मैं सभी बच्चों के मुँह पर अपने चरन के चेहरे की छाप देख रहा हूँ। सभी बच्चों को गोद में उठाकर छाती से लगा लेने की इच्छा हो रही है। चरन जब तक जीता रहा तब तक तो किसी दिन मेरे मन में यह भाव नहीं उठा।

केशव सिर झुकाये सुनता चला जा रहा था। वृन्दावन की पाठशाला में पढ़नेवाला वनमाली और उसका छोटा भाई दोनों कुछ खाने की सामग्री और पानी लिये चले जा रहे थे। वृन्दावन ने पास बुलाकर पूछा—वनमाली, कहाँ जाता है?

वनमाली ने कहा—बाप को खाने के लिए रोटी देने खेत पर जा रहा हूँ पण्डितजी।

"यहाँ तो आओ ज़रा तुम दोनों" कहकर दोनों हाथ फैलाकर वृन्दावन ने दोनों को एक साथ गोद में लेकर छाती से लगा लिया। फिर बड़े स्नेह से दोनों के मुँह देखते-देखते कहा—आहा! कलेजा ठण्डा हो गया रे वनमाली!—केशव, कल मुझे बड़ा डर लगा था कि शायद चरन को मैंने सचमुच गँवा दिया। लेकिन नहीं, अब कुछ डर नहीं है, अब मेरा चरन कहीं नहीं जायगा, वह कहीं नहीं गया। इन्हीं सब

लड़कों में मेरा चरन मौजूद है, इन्हीं लड़कों के भीतर एक दिन मैं उसे अवश्य फिर पाऊँगा।

केशव ने भयपूर्ण दृष्टि से इधर-उधर ताककर कहा—इन लड़कों को छोड़ दो भाई वृन्दावन। इन लोगों के माँ-बाप या और कोई कहीं देख लेगा, तो तुम पर बहुत नाराज़ होगा।

"ओ, ठीक कहते हो! मैं चरन को अभी जलाये आ रहा हूँ!" यों कहकर लड़कों को छोड़कर वृन्दावन उठ खड़ा हुआ।

वनमाली अपने पण्डितजी के इस अनोखे व्यवहार से लज्जा के मारे सिटपिटा गया था। छुटकारा पाते ही भाई को लेकर दौड़ता हुआ चला गया।

पण्डितजी अर्थात् वृन्दावन वहीं राह में घुटने टेककर बैठ गया और ऊपर मुँह करके हाथ जोड़कर कहने लगा—हे जगदीश्वर, चरन को आपने छीन लिया सो अच्छा ही किया, लेकिन अब मेरी इस दृष्टि को न हर लेना, यही मेरी प्रार्थना है। आज जैसे आपने मुझे इस तरह सब बच्चों में अपने चरन का अस्तित्व दिखलाया है, इसी तरह मैं सदा सभी बच्चों के मुख में अपने चरन का मुख देखा करूँ—इसी तरह उन्हें गोद में लेने को अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दे सकूँ।—भाई केशव, मसान में खड़े होकर तुम जिनको गालियाँ दे रहे थे वे सभी शायद जुआचोर नहीं हैं।—क्यों?

केशव ने हाथ पकड़कर कहा—घर चलो।

"चलो" कहकर वृन्दावन सहज में ही उठ खड़ा हुआ। दो-एक क़दम आगे बढ़कर उसने कहा—आज मेरी इस बक-बक के लिए मुझे क्षमा करो भाई। भैया केशव, हृदय के ऊपर बहुत बड़ा बोझ लदा हुआ था। मालूम नहीं, मुझे यह दण्ड किस कुकर्म का मिला? जानकर तो मैंने ऐसी कोई गोहत्या या ब्रह्महत्या की नहीं, जो भगवान् ने इतना बड़ा दण्ड मुझको दिया! मेरा—

बात पूरी भी न होने पाई, केशव बीच ही में गरजकर कह उठा—यह जाकर पूछो उस हरामज़ादे बूढ़े घोषाल से! जाकर पूछो और किसी पाजी जुआचोर से, जो कहेगा कि यह सब पूर्वजन्म के पाप का फल है! ओह! यही इस देश के पूजनीय ब्राह्मण हैं!

वृन्दावन ने धीर भाव से कहा—केशव, काले साँप की केंचुल को लाठियों से पीटने से क्या लाभ? और, सड़े मट्ठे की दुर्गन्ध का अपवाद दूध के सिर थोपना भी भूल है! यही देखो कि अज्ञान का अन्धकार ब्राह्मण-जाति को ठेलकर कहाँ पर ले गया है।

सब पिछली बातें याद करके केशव क्रोध और क्षोभ की आग से भीतर-भीतर जलकर ख़ाक हुआ जा रहा था। उसके मुँह में जो आया, वही वह कह उठा—तो फिर तुमको इतना बड़ा दण्ड काहे का और क्यों मिला?

वृन्दावन ने कहा—यह तो दण्ड नहीं है भाई। यही बात तो मैं तुमसे कह रहा था केशव, जब कोई पाप याद

ही नहीं आता तब इसे पाप का दण्ड मानकर मैं अपने को अपनी ही दृष्टि में छोटा बनाना नहीं चाहता। याद तो नहीं आता कि इस जीवन में कोई पाप किया है, और पिछले जीवन के सिर पर भी निरर्थक अकारण अपराध का आरोप करना मेरी समझ में अपनी आत्मा का अपमान करना है। अतएव यह मेरे पाप का फल नहीं है, यह मेरे अपराध का दण्ड नहीं है—यह मेरे गुरु-गृहवास के गौरव का क्लेश है। कोई भी बड़ी--महत्व की--चीज़ दुःख उठाये विना नहीं मिलती। केशव, आज मुझे अपने चरन की मृत्यु से जो शिक्षा मिली है, उतनी बड़ी शिक्षा पुत्र-शोक जैसा भारी दुख सहे विना किसी तरह मिल नहीं सकती--नहीं मिलती। हृदय चीरकर दिखाया जा सकता तो मैं तुमको दिखा देता कि आज पृथ्वी-तल पर जहाँ जिसके जितने लड़के-वाले हैं, उन सबके लिए मेरा चरन अपनी जगह खाली करके चला गया है। तुम ब्राह्मण हो, आज मुझे केवल यही आशीर्वाद दो कि मैंने जो कुछ पाया है उसे कभी अपने हाथ से न गँवा बैठूँ, अपना सब नष्ट न कर डालूँ। बस।

वृन्दावन का गला रुँध गया। दोनों मित्र आमने-सामने खड़े हुए आँखों से आँसुओं की वर्षा करने लगे।

उस दिन वृन्दावन ने केवल एक नल का कुआँ बनवाने का इरादा किया था; किन्तु पीछे उसने देखा कि सारे गाँव के लिए एक ही कुआँ काफ़ी न होगा। उसने सोचा, गाँव की पूरब-

वाली बस्ती में ही अधिकांश दीन-दुखिया ग़रीब रहते हैं। उस हिस्से में और एक बड़ा सा कुआँ तैयार कराये बिना पानी की क़िल्लत नहीं हटेगी, रोग का वेग भी कम न होगा। यही सोचकर वृन्दावन ने केशव को कलकत्ते की एक बड़ी कम्पनी के साहब से मिलने के लिए भेजा था। केशव ने लौटकर ख़बर दी कि काफ़ी रक़म ख़र्च की जाय तो नल कूपों के द्वारा केवल एक ही गाँव का नहीं, प्रत्युत छः-सात गाँव तक का जल-कष्ट दूर किया जा सकता है। इतना ही नहीं, वक़्त-बेवक़्त वर्षा न होने पर खेती की सिंचाई के लिए भी काफ़ी पानी मिल सकता है।

वृन्दावन ने ख़ुश होकर कुएँ बनवाने की मंजूरी दे दी और इसी मतलब से माता की तेरहीं के दिन उसने देवता के नाम की जायदाद छोड़कर अपनी सारी सम्पत्ति का एक दानपत्र लिखवाकर उसकी रजिस्ट्री करा दी। केशव के हाथ में वह दानपत्र देते हुए वृन्दावन ने कहा—भैया केशव, तुम इतना सा यह काम कर दो, जिसमें मेरे चरन के साथी-सङ्गी और इष्टमित्र अब फिर ज़हरीला गन्दा पानी पीकर बे-मौत न मरें। और, मेरी सबसे बड़ी जायदाद तो यह पाठशाला ही है। तुमने इस पाठशाला का भी भार अपने ऊपर ले लिया, अब मुझे और किसी बात की चिन्ता नहीं रही। अगर कभी किसी दिन यहाँ लौटकर आऊँ और अपनी पाठशाला के एक लड़के को भी 'यथार्थ मनुष्य' कहलाने का अधिकारी हुआ देखूँ

तो मुझे सच्चा सुख होगा। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ। मैं उसी दिन अपने चरन के वियोग का दुःख भूल सकूँगा !

दुर्गादास बाबू इधर कई दिन से बराबर हर घड़ी वृन्दावन के पास मौजूद रहते थे। वे यह सुनकर बहुत ही क्षुब्ध होकर बोले—वृन्दावन, तुम्हें सान्त्वना देने के योग्य शब्द तो मुझे सूझते नहीं भैया, लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि दुःख चाहे जितना बड़ा हो, उसे सहना ही मनुष्यत्व है—इसी में उसका महत्व है। विवश होकर संसार को छोड़ बैठना मर्दानगी नहीं; ऐसा करना भगवान् की इच्छा के विरुद्ध है।

वृन्दावन ने सिर उठाकर कोमल स्वर से कहा—संसार छोड़ने का तो मेरा विचार नहीं है मास्टर साहब! ऐसा करना तो एकदम असम्भव है। बाल-बच्चों का मुँह देखे बिना तो मैं एक दिन भी जी नहीं सकूँगा। आपकी दया से मुझे सब लोग पण्डितजी कहते हैं। अपने इस भारी सम्मान को मैं किसी तरह अपने हाथ से गँवाने के लिए तैयार नहीं। मैं जहाँ-कहीं जाकर रहूँगा वहाँ यही धन्धा शुरू कर दूँगा।

दुर्गादास ने कहा—लेकिन तुम अपना सर्वस्व तो लोगों का जल-कष्ट दूर करने के लिए दान किये जा रहे हो, तुम लोगों का निर्वाह कैसे होगा ?

वृन्दावन ने लज्जा-मिश्रित हास्य के साथ हाथ से, दीवाल में खूँटी पर टँगी, भिक्षा माँगने की झोली दिखाकर कहा—

वैष्णव वैरागी के लड़के के लिए कहीं मुट्ठी भर भीख की कमी नहीं हो सकती मास्टर साहब! मेरी आयु के बाक़ी दिन इसी तरह मज़े में गुज़र जायँगे। इसके सिवा यह सारी सम्पत्ति तो मेरे चरन की है और इसी लिए मैं वह सब उसी के सङ्गी-साथियों को अर्पण किये जाता हूँ।

दुर्गादास बाबू ब्राह्मण और वृद्ध होने पर भी तेरहीं के दिन ख़ुद वहाँ मौजूद रहकर सब देख-भाल करते रहे थे। इसी से उन्हें भी कुसुम का यथार्थ परिचय प्राप्त हो चुका था। इस समय कुसुम की याद आ जाने से उन्होंने कहा—मगर यह तो अच्छा न होगा भैया! तुम्हारी बात जुदी है लेकिन बहू के लिए तो इस तरह भिक्षा-वृत्ति पर भरोसा करना बड़ी लज्जा की बात होगी। यह हो ही नहीं सकता वृन्दावन!

वृन्दावन ने सिर झुकाकर कहा—वह अपने भाई के पास रहेगी।

दुर्गादास बाबू वृन्दावन को अपने बेटे के बराबर समझते और स्नेह करते थे। उसकी इस विपत्ति और सबसे अधिक इस गृह-त्याग के सङ्कल्प से उन्हें बड़ा दुख हुआ। उसके इस इरादे को बदलने की अन्तिम चेष्टा करते हुए उन्होंने कहा—वृन्दावन, जन्मभूमि छोड़कर कहीं चले जाने की क्या आवश्यकता है? यहीं रहकर भी तो फिर तुम्हारा सब कुछ पहले ही की तरह हो सकता है।

गला घोट कर ही कहना चाहिए—जो मारे जाते या मरते हैं उन पर क्या कभी किसी की नज़र पड़ती है ? आप सब पढ़े-लिखे भले आदमी अगर इस तरह ममता-मोह छोड़ कर ग्रामों का परित्याग न करते, अगर शहरों को जाकर न आबाद करते, तो हम लोग कभी इतने निरुपाय और असहाय होकर न मरते — कभी अकाल-मृत्यु या शोचनीय मृत्यु का शिकार न बनते। नाराज़ न होइएगा डाकृर साहब, और बुरा भी न मानिएगा। सोचिए तो भला, आप सब नागरिकों के लिए अन्न और वस्त्र जुटानेवाले निरक्षर, निर्द्धन, अभागे ग़रीबी के मारे किसान भाई इन गाँवों में ही रहते हैं। उनको पैरों से रौंद कर, कुचल-कुचलकर ही आप लोग ऊपर उठने की सीढ़ी तैयार करते हैं। केशव एम० ए० पास करके भी अपनी इच्छा से उस उन्नति की राह को छोड़कर, उधर से मुँह फेरकर, इन परित्यक्त अनादृत भाइयों के पास आने को उद्यत हैं!

सहसा उत्साह और आनन्द के आवेश से वृन्दावन को गले लगाकर केशव कह उठा—भाई वृन्दावन, 'यथार्थ मनुष्य' बनने का बहुत बड़ा सुयोग तुम मुझे दिये जा रहे हो। दस-पाँच वर्ष के बाद दया करके एक बार लौट कर अवश्य देख जाना कि तुम्हारी जन्मभूमि में लक्ष्मी और सरस्वती की एक साथ स्थापना हुई है कि नहीं।

दुर्गादास और अविनाश, दोनों जने इन दोनों मित्रों के मुख की ओर श्रद्धा और विस्मय के साथ ताक रहे थे।

दूसरे दिन वृन्दावन केवल भित्ता की झोली साथ लेकर अपना बाड़ल-गाँव छोड़ने की तैयारी कर चुका था। उसने निश्चय कर लिया था कि इसी तरह भित्ता माँगते-खाते किसी जगह जाकर वह अपने लिए कर्म-क्षेत्र चुन लेगा। केशव ने वृन्दावन से बार-बार यह अनुरोध किया था कि तुम मेरे गाँव में चलकर कुछ दिन मेरे घर में रहो; मगर वृन्दावन ने स्वीकार नहीं किया। इसका कारण उसने यह बतलाया कि वह पूर्ण रूप के सुख-दुख और सुविधा-असुविधा की उपेक्षा करना चाहता है।

वृन्दावन ने यात्रा की तैयारी कर ली। ठाकुरजी की पूजा-सेवा का भार पुरोहित को दिया, और उसकी देख-भाल का काम केशव को सौंप दिया। दास-दासी आदि सभी को उसने कुछ न कुछ देकर विदा किया। उसकी माँ के सन्दूक़ में जो कुछ धन निकला था वह सब उसने नौकर-चाकरों को बाँट दिया।

केवल कुसुम के बारे में ही उसने कुछ नहीं सोचा, उसे कुछ नहीं दिया-लिया। उसकी ओर ध्यान देने को न उसका जी ही चाहा, और न उसने ऐसा करने की आवश्यकता ही समझी! जिस दिन कुसुम ने चरन को अपने पास नहीं रक्खा, आश्रय नहीं दिया, उसी दिन से वृन्दावन के मन में उसकी ओर से एक खीझ का भाव जमा होने लगा था। वह खीझ चरन की मृत्यु के बाद से, इच्छा न रहने पर भी, विद्वेष के रूप में बदल गई थी। इसी से उसने इस बारे में कुछ भी खोज नहीं की; ख़बर नहीं ली कि कुसुम यहाँ क्यों आई है,

किस तरह आई है, किसलिए आई है। और, खोज-ख़बर लिये बिना ही उसने अपने मन में निश्चय कर रक्खा था कि कुसुम जैसे आपसे आई है वैसे ही तेरहीं होजाने के बाद आप ही चली जायगी। कुसुम के आने के उपरान्त यद्यपि काम-काज के लिए लाचार होकर कई वार वृन्दावन को उससे बोलना-चालना पड़ा था, किन्तु तो भी उसने कुसुम के मुँह की ओर एक दफ़े के सिवा दुवारा नहीं देखा। उधर कुसुम ने भी वृन्दावन से बोलने या मिलने के लिए रत्ती भर भी चेष्टा नहीं की।

इसी तरह ये कई दिन बीते थे। किन्तु अब तो और अधिक समय न था। इसी से आज यात्रा से पहले वृन्दावन ने एक दासी को वुलाकर कुसुम के पास यह पूछ आने के लिए भेजा कि वह कब जायगी। दासी के लौटने की प्रतीक्षा में वृन्दावन वाहर बैठा था। दासी फ़ौरन् लौट आई। उसने ख़बर दी कि अभी वे जाना नहीं चाहतीं।

वृन्दावन ने विस्मित होकर कहा—यहाँ तो अब रहना हो नहीं सकता। यह तूने कहा क्यों नहीं?

दासी—बहूजी ख़ुद सब कुछ जानती हैं।

वृन्दावन ने खीझकर कहा—तो फिर जाकर पूछ आ, क्या वे यहाँ अकेली ही रहेंगी?

दासी ने मिनट भर में ही आकर कहा—हाँ, यहीं रहेंगी।

तब वृन्दावन स्वयं भीतर गया। कोठरी के किवाड़े बन्द थे। वृन्दावन एकाएक भीतर घुसने की हिम्मत न

कर सका। किवाड़े ज़रा ठेलकर भीतर देखते ही वृन्दावन के रोंगटे खड़े हो गये। आग से जले हुए घर की जली हुई दीवार की तरह कुसुम इधर ही मुँह किये खड़ी थी। उसकी दृष्टि उत्कट पागलों की-सी थी। आत्मग्लानि और पुत्र का शोक कितनी जल्दी मनुष्य को क्या से क्या बना डाल सकता है, इसका सजीव उदाहरण पहले-पहल देखकर वृन्दावन भय के साथ पीछे हट गया।

असावधानी के कारण किवाड़े खटकने से कुसुम का ध्यान बँट गया। उसने आँख उठाकर वृन्दावन की ओर देखा। फिर आकर पूरा दरवाज़ा खोलकर बोली--भीतर आओ।

वृन्दावन के भीतर जाते ही दरवाज़ा भेड़कर ज़ञ्जीर बन्द कर लेने के बाद कुसुम वृन्दावन के सामने खड़ी हुई। इस आशङ्का से कि शायद कुसुम प्रकृतिस्थ नहीं है, और वह पगली न जाने क्या अनर्थ कर बैठे, वृन्दावन का हृदय काँप उठा।

किन्तु कुसुम ने अनर्थ या असङ्गत आचरण कुछ भी नहीं किया। गले में आँचल डालकर, स्वामी के पैरों पर गिर कर—पैरों में ही मुँह छिपाकर—थोड़ी देर तक वह योंही पड़ी रही।

वृन्दावन डर के मारे हिलने-डुलने का भी साहस न कर सका—काठ की तरह जहाँ का तहाँ, जैसा का तैसा, खड़ा रहा।

कुसुम देर तक पड़ी रहकर उन दोनों पैरों के भीतर से जैसे शक्ति प्राप्त करती रही। फिर उठ बैठी, और स्वामी के

मुँह की ओर देखकर बड़े ही करुण स्वर में बोली—सब कहते हैं, तुमने यह दुःख सह लिया है लेकिन मेरे कलेजे के भीतर तो दिन-रात एक सी आग जल रही है, मैं किस तरह जियूँगी? और, तुम्हें छोड़कर मेरा मरना भी किसी तरह नहीं हो सकता। मैं क्या करूँ?

दोनों ही के हृदय में एक ही आग जल रही थी। वृन्दावन के हृदय में जो विद्वेष की आग सुलग रही थी वह इन शब्दों से बुझ गई। उसने कुसुम का हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए कहा—कुसुम, मैंने जिसमें शान्ति पाई है उसी में तुम भी पाओगी। उसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

कुसुम चुपचाप ताकती रही। वृन्दावन ने कहना शुरू किया—चरन को तुम कितना प्यार करती थीं सो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कुसुम। इसी से तुमको भी इसी अपनी राह में बुलाता हूँ। तुम्हारा चरन मरा नहीं है, कहीं गया नहीं है, केवल छिपा हुआ है। एक बार अच्छी तरह ध्यान देकर देखना सीख लेने पर देखोगी कि संसार में जहाँ कहीं जितने लड़के हैं, उन्हीं में हमारा चरन है।

इतनी देर बाद कुसुम की आँखों से आँसू बह चले। उसने फिर एक बार झुककर स्वामी के पैरों पर सिर रख दिया। क्षण भर बाद सिर उठाकर उसने कहा—मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

वृन्दावन ने डरकर कहा—मेरे साथ? यह तो असम्भव है।

कुसुम—सर्वथा सम्भव है। मैं चलूँगी।

वृन्दावन ने उत्कण्ठित होकर कहा—कैसे चलोगी कुसुम, मैं तुम्हारा पालन-पोषण किस तरह करूँगा ? मैं अपने लिए भिक्षा माँग सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे लिए तो नहीं माँग सकता! इसके सिवा तुम पैदल चलोगी कैसे ?

कुसुम ने अविचलित दृढ़ स्वर में कहा—मैं भी पैदल चल सकती हूँ—पैदल ही यहाँ तक आई हूँ। इसके सिवा भिक्षा तो मैं तुम्हें माँगने नहीं दूँगी,—चाहे अपने लिए हो चाहे मेरे लिए। तुम केवल अपना कर्तव्य करते रहना। मैं पैसा पैदा करना भी जानती हूँ, और गिरिस्ती चलाना भी। दादा की गिरिस्ती अभी तक मैंने ही चलाई है।

वृन्दावन सोचने लगा। कुसुम ने कहा—सोचना व्यर्थ है। मैं ज़रूर ही चलूँगी। अवहेला करके लड़का गँवा दिया, अब स्वामी को गँवाना नहीं चाहती।

वृन्दावन ने और भी क्षण भर सोचकर पूछा—मेरा चरन मुझे जिस मन्त्र की दीक्षा दे गया है उसी मन्त्र की दीक्षा तुम ग्रहण कर सकोगी क्या ?

कुसुम ने शान्त स्वर से कहा—ज़रूर।

"तो फिर चलो।" कहकर वृन्दावन ने सम्मति दे दी, और फिर एक बार केशव को सब सौंपकर उसी रात को, स्त्री को साथ ले, वह बाड़ल छोड़कर चल दिया।

यों कहकर आँसू पोंछती हुई बेचारी अबला भीतर चली गई।

वृन्दावन पागल की तरह आर्त्त स्वर से ख़ुशामद करने लगा। तारिणी के पैर पकड़कर उसने कहा—क्षमा कीजिए, दया कीजिए, रक्षा कीजिए।

चाण्डाल तारिणी ने एक न सुनी। "नहीं, किसी तरह नहीं"—यही रट लगा दी।

इसी समय शास्त्रज्ञ घोषाल महराज पास ही के अपने घर से खड़ाऊँ खटखटाते आ गये। सब हाल सुनकर हर्ष प्रकट करते हुए बोले—अभी तक शास्त्रों का प्रभाव है, ब्राह्मण का तेज कहीं चला नहीं गया। कुत्ते को मुँह लगाने से वह सिर पर चढ़ता है। नीच लोगों को दण्ड न देने से समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे ही कलिकाल में धर्म-कर्म, ब्राह्मणों का सम्मान, सब मिटता जा रहा है। उसपर अगर समाज-शासन शिथिल कर दिया जाय तो धरती लौट-पौट जाय। क्यों जी तारिणी, उस दिन कहा न था तुमसे मैंने कि वृन्दा बोष्टम बहुत बढ़-बढ़कर बातें करने लगा है, उसका दिमाग़ दुरुस्त नहीं है। जब इसने मेरी बात नहीं मानी तभी मैंने समझ लिया था कि इसपर दैव का कोप है। अब रक्षा नहीं हो सकती! देख लिया तारिणी, हाथोंहाथ फल पा गया।

तारिणी ने उनसे भी आगे बढ़कर कहा—और मैं! मैंने उस दिन तालाब के किनारे खड़े होकर, जनेऊ हाथ में लेकर,

कहा था—तेरा वंश-नाश हो! वही हुआ! काका, मैं सन्ध्या-पूजा किये बिना पानी नहीं पीता। अभी चन्द्र-सूर्य निकलते हैं—संसार में दिन-रात होती है! ज्वार-भाटे का सिलसिला जारी है!

यों कहकर, अपने तीर से घायल होकर ज़मीन पर पड़े तड़प रहे शिकार की मृत्यु-यन्त्रणा देखकर शिकारी जैसे अपनी अचूक निशानेबाज़ी के आनन्द का उपभोग करता है वैसे ही सन्तुष्ट दृष्टि से देखता हुआ नर-पिशाच तारिणी इस एकमात्र पुत्र के शोक से मृतप्राय हो रहे अभागे पिता की असीम व्यथा का उपभोग, गर्व के साथ, करने लगा।

किन्तु वृन्दावन से अब अधिक सहा न गया। वह उठकर खड़ा हो गया। अपनी ग़रज़ को—लड़के की जान बचाने के लिए—बहुत बरदाश्त किया, बहुत ख़ुशामद की, बहुत गिड़गिड़ाया, बहुत रोया-धोया। किन्तु हद हो गई। अब की उसने फिर एक शब्द भी ज़बान से नहीं कहा। इस दारुण अज्ञान और अन्धतम मूढ़ता के चरम असह्य अत्याचार ने इतनी देर बाद उसके हृदय में हो रही आसन्न पुत्रवियोग की वेदना को दबाकर उसके आत्माभिमान को जगा दिया। सारे गाँव की भलाई का उद्योग करने के फल-स्वरूप इन दोनों स्वधर्मनिष्ठ ब्राह्मणों में से किसकी गायत्री-सन्ध्या-पूजा आदि के तेज से आज उसका वंश निर्बीज होने जा रहा है, इसकी मीमांसा के लिए होनेवाली वितण्डा का अन्तिम

निर्णय सुने बिना ही वृन्दावन चुपचाप धीरे-धीरे तारिणी की चौपार से निकलकर बाहर आया, और दस बजे अपने रोगी बालक की शय्या के पास आकर खड़ा हुआ। उस समय उसके मुखमण्डल पर शान्त भाव था, उद्वेग का लेश न था।

केशव उस समय आग जलाकर चरन के हाथ-पैर सेंक रहा था—प्यासा आदमी जैसे मृगतृष्णा से प्यास बुझाने का उद्योग करता है वैसे ही रोग के साथ जूझ रहा था। वृन्दावन के मुँह से सब हाल सुनकर उसके मुँह से केवल "ओफ़" निकला। वह उठकर सीधा खड़ा होगया, और कन्धे पर चादरा डालकर बोला—कलकत्ते जाता हूँ। अगर डाक्टर मिल गया तो शाम तक ज़रूर लौट आऊँगा। और, अगर न डाक्टर ला सका तो फिर मुँह न दिखाऊँगा। यही आख़िरी भेंट समझना। ओफ़! यही ब्राह्मण एक दिन केवल भारत ही नहीं, सारी पृथ्वी के लिए गर्व की चीज़ थे! सोचने से भी छाती फटने लगती है। वृन्दावन, जाता हूँ, हो सके तो लड़के को तब तक जिला रखना।

केशव तेज़ी से चल खड़ा हुआ।

केशव के जाते ही पिता को पास पाकर "माँ के पास जाऊँगा" कहकर चरन ने बेतहाशा रोना शुरू कर दिया। लड़का स्वभाव से शान्त था, कभी किसी तरह की ज़िद न करता था। किन्तु आज उसे बहलाना बहुत कठिन हो उठा। क्रमशः जितना ही दिन ढलने लगा उतनी ही उत्तरोत्तर रोग की यन्त्रणा

बढ़ने लगी। प्यास के मारे जल के लिए हाहाकार और माँ के पास जाने के लिए उन्मत्त चीत्कार करके उसने घर के सभी लोगों को पागल बना दिया। यह चिल्लाना बन्द हुआ जाकर सन्ध्या होने से कुछ पहले, जब हाथ-पैर बेक़ाबू हो गये और गला भी रुँध गया।

चैत के छोटे दिन का अन्त होने ही को था कि केशव, डाक्टर को लिये, आ पहुँचा। डाक्टर उसी की हमजोली का और मित्र भी था। भीतर आकर चरन की ओर देखते ही मुँह उदास करके डाक्टर बाबू एक किनारे बैठ गये। केशव ने भयविह्वल दृष्टि से डाक्टर के मुँह की ओर जैसे देखा वैसे ही डाक्टर ने कुछ कहना चाहा, लेकिन वृन्दावन के ऊपर नज़र पड़ते ही रुक गये।

वृन्दावन ने सब देख लिया, समझ भी लिया। उसने शान्त भाव से कहा—जी हाँ, मैं ही इसका बाप हूँ; लेकिन सकुचने की कोई ज़रूरत नहीं। जो कहना है, कह डालिए। जो बाप बारह घण्टे बिना दवा-दारू के अपने इकलौते लड़के को लिये बैठा रह सकता है, वह सब कुछ सह सकता है डाक्टर साहब!

पिता का इतना अधिक धीरज देखकर डाक्टर मन में दङ्ग रह गये। तो भी, डाक्टर होने पर भी, पिता के आगे अपना वक्तव्य कह न सके। उन्होंने सिर झुका लिया।

वृन्दावन समझ गया। उसने कहा—केशव, अब मैं जाता हूँ। पास ही ठाकुरजी का स्थान है। वहीं हूँ। ज़रूरत पड़े